श्री तंत्रदुर्गासप्तशती

(सप्तशत्या गुह्यबीजनामावलि)

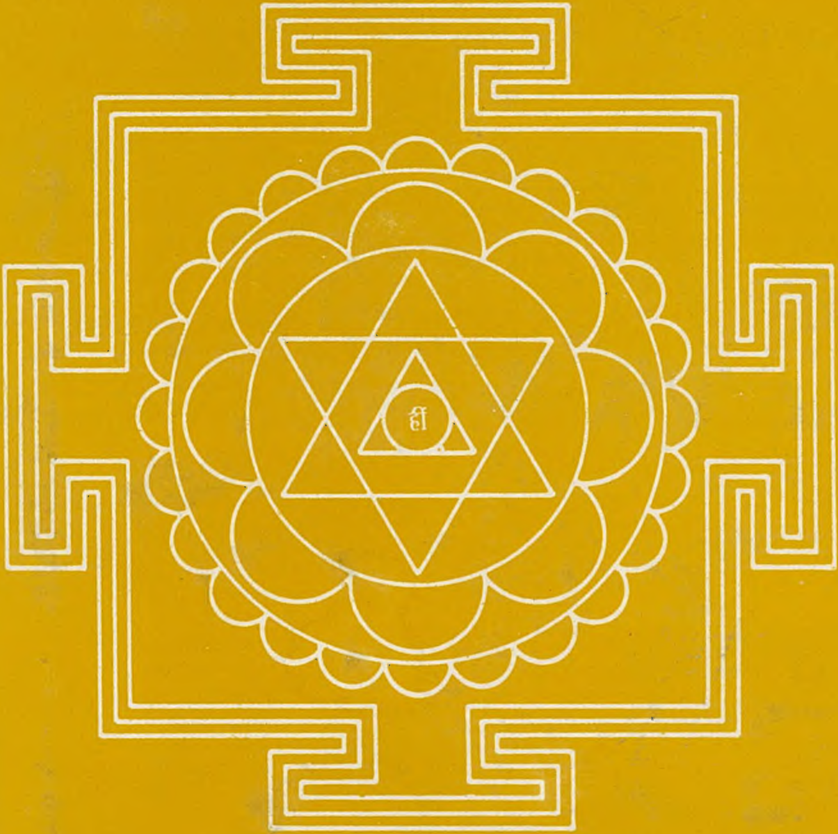

डॉ॰ रामचन्द्र पुरी
वेदान्ताचार्य

।। श्रीः ।।

व्रजजीवन प्राच्यभारती ग्रन्थमाला

130

श्रीतन्त्रदुर्गासप्तशती

(सप्तशत्या गुह्यबीजनामावलि)

लेखक

डॉ. रामचन्द्र पुरी

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

दिल्ली

श्रीतन्त्रदुर्गासप्तशती (सप्तशत्या गुह्यबीजनामावलि)

प्रकाशक
चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
38 यू. ए. जवाहरनगर, बंगलो रोड
पो. बा. नं. 2113
दिल्ली-110007
दूरभाष : 23856391; 41530902

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन
प्रथम संस्करण 1998
मूल्य 200.00

अन्य प्राप्तिस्थान
चौखम्बा विद्याभवन
चौक (बैंक ऑफ बडौदा भवन के पीछे)
पो. बा. नं. 1069
वाराणसी-221001

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन
पो. बा. नं. 1129
वाराणसी-221001

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस
4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)
गली नं. 21-ए, अंसारी रोड
दरियागंज, नई दिल्ली-110002

इदं न मम

शारदीय नवरात्रों में 'तंत्रदुर्गासप्तशती' नामक पुस्तक की एक फोटो स्टेट प्रति प्रिय सुरेश आनन्द ने लाकर दी। यह प्रति साफ न थी, बहुत से बीजाक्षरों की मात्राएं अस्पष्ट थीं जैसे, ह्रां, ह्रीं और ह्रौं आदि में कई जगह यह निश्चय कर पाना सरल न था कि वास्तव में यहां कौन सा बीजाक्षर है। पुस्तक किन्हीं पं॰ शिवदत्त शास्त्री द्वारा छपाई गई थी। इसमें 'दुर्गासप्तशती' के सात सौ श्लोक बीजमंत्रों के रूप में थे। श्री शास्त्री ने अपनी प्रस्तावना में लिखा था कि उन्होंने संवत् 2000 के आश्विन मास में उक्त 'तंत्रदुर्गासप्तशती' के बीजमंत्र विन्ध्याचल में साधनारत एक महात्माजी की हस्तलिखित पुस्तिका से उतारे हैं। शास्त्री जी के अनुसार प्रचलित दुर्गासप्तशती के श्लोकों का परिणत बीजरूप ही 'तंत्रदुर्गासप्तशती' है।

'तंत्रदुर्गासप्तशती' के बारे में मुझे कुछ भी ज्ञात न था। यह अद्भुत और अश्रुतपूर्व थी। मैंने पं॰ गोपीनाथ कविराज द्वारा संकलित 'तांत्रिक साहित्य' तथा तंत्र एवं शाक्त–साधना विषयक साहित्य में इसकी खोज की, कई साधकों, विद्वानों, हरिद्वार कुंभ में आये साधु–सन्यासियों, महामंडलेश्वरों आदि से साक्षात् और दूरभाष से संपर्क कर 'तंत्रदुर्गासप्तशती' के बारे में जानकारी चाही, लेकिन, सबका केवल एक ही जबाव था 'इसके बारे में हमें कुछ भी ज्ञात नहीं।'

फिर भी, शाक्त–उपासकों के कौल और समयाचार में प्रचलित अद्भुत और अकल्पनीय बीजमंत्रों से संपन्न 'तंत्रदुर्गासप्तशती' को सम्पादित कर उसे सही–सही रूप में प्रकाशित करने की आकांक्षा

जगी। लेकिन साधना संबन्धी कोई ग्रन्थ यदि मान्य विद्वानों और साधकों के लिए 'श्रवणायापि बहुभि र्यो न लब्धः' की स्थिति में हो, तो उसका प्रकाशन निरर्थक होगा, ऐसा भी सोचता रहा। पुस्तक की प्रामाणिकता के बारे में भी मुझे संदेह था।

हरिद्वार के महाकुंभ के अवसर पर कई विद्वानों, साधकों, शक्तिपीठाधीश्वरों तथा महामण्डलेश्वर सन्यासि–विद्वद्वर्ग ने परामर्श दिया कि मैं संन्यासी जगत् के सर्वोच्च विद्वान् और भगवती श्री के उपासक स्वामी काशिकानन्द जी से मिल लूं और यदि वे इस ग्रन्थ को प्रामाणिक मान लें, तो निःसंदेह यह प्रामाणिक है, भले ही इसका उल्लेख कहीं न मिल रहा हो।

पूज्य स्वामी श्री काशिकानन्द जी से सूरत गिरि बंगले में मिला। उन्होंने पुस्तक देखी और इसे प्रामाणिक एवं परंपरित बताया। उन्होंने इसे प्रकाशित करने का परामर्श भी दिया।

इन साधकों और विद्वानों के समर्थन से उत्साह मिला। सम्पादन (बीजाक्षरों के सही रूप के निर्धारण, संशोधन आदि) का कार्य प्रारम्भ कर दिया। सतत अध्यवसाय से अवगत हुआ कि 'तंत्रदुर्गासप्तशती' के बीजों का संयोजन बड़े वैज्ञानिक रूप से हुआ है। उदाहरण के लिए दुर्गासप्तशती के 'ऋषिरुवाच, राजोवाच, वैश्य उवाच, मार्कण्डेय उवाच, देव्युवाच, देवा ऊचुः आदि श्लोकों के बीजाक्षर–क्रमशः श्रौं, रौं, वैं, श्रीं, ह्रीं, ह्सौं आदि प्रायः सर्वत्र एक रूप ही हैं।

कुछेक अपवाद स्थलों पर जहां ऐसा नहीं था, वहां ये बीज इन श्लोकों के सन्निकट आगे या पीछे मिले, जिन्हें यथास्थान रखना जरूरी था। कहीं–कहीं वर्तमान में प्रचलित दुर्गासप्तशती के श्लोकों की संख्या में संशोधन कर देने पर बीजमंत्रों की स्थिति सही हो जाती है। मैंने ऐसा संशोधन किया है, और इसके लिए मुझे प्रामाणिक आधार भी मिल गये हैं। स्पष्टतः गीताप्रेस और अन्यत्र प्रकाशित एवं हस्तलिखित प्रतियों में पर्याप्त पाठान्तर एवं श्लोकसंख्यान्तर हैं। ऐसी प्रतियां मेरे पास हैं।

'तंत्रदुर्गासप्तशती' के बीजमंत्रों के अध्ययन–मनन के सन्दर्भ में अपने प्राचीन साहित्य, विशेषरूप से 'औपनिषदिक साहित्य' के

पुनरावलोकन की भी आवश्यकता महसूस हुई। विशाल उपनिषत् साहित्य में बहुत से उपनिषत् तंत्र–योग और शाक्तादि उपासनाओं के प्रतिपादक हैं और इनमें बीजाक्षरों और बीजमंत्रों का विस्तृत विवरण–विवेचन है।

किन्तु, आचार्य भगवत्पाद आद्य शंकराचार्य ने जिन एकादश उपनिषदों पर भाष्य लिखे हैं, उनका अध्ययन केवल दार्शनिक एवं वैचारिक स्तर पर किया जाता रहा है। श्वेताश्वतर उपनिषद् को छोड़ कर अन्य उपनिषदों के साधनापक्ष की उपेक्षा ही की गई है, और आज भी की जा रही है।

'तंत्रदुर्गासप्तशती' के अध्ययन–मनन के समय मेरा ध्यान उपनिषदों, (विशेषरूप से कठोपनिषद्), के साधनापक्ष की ओर आकर्षित हुआ। मुझे लगा यम–नचिकेता संवाद में भगवती महामाया की साधना–सरणि का विवेचन है। इस उपनिषद् की श्रुतियों में मुझे स्थान–स्थान पर भगवती महामाया के 'बीजनाम' झांकते मिले। मुझे ऐसा भी महसूस हुआ कि 'तंत्रदुर्गासप्तशती' दुर्गासप्तशती का बीजरूपान्तरण नहीं, बल्कि 'दुर्गासप्तशती' बीजरूप 'तंत्रदुर्गासप्तशती' का ही अंकुरित–पल्लवित रूप है, वटबीज से विकसित वटवृक्ष की भांति। वास्तव में, मूलरूप भगवती के बीजनाम हैं, और दुर्गासप्तशती का समस्त कथानक उसका विकसित रूप। आख्यायिका प्ररोचना या सुखावबोधकार्थक है। मैंने तंत्रदुर्गासप्तशती के ह्रीं, क्लीं, श्रीं, ऐं तथा स्त्रीं इन पांच बीजनामों के विवेचन के प्रसंग में अपनी इस धारणा के लिए पुष्ट प्रमाण दिये हैं।

पुस्तक अन्तिम रूप से टंकित हो जाने के बाद प्रख्यात तपस्वी एवं ज्योतिर्विद् पं० गिरीशचन्द्र जी बडोनी से दुर्गासप्तशती की एक प्राचीन प्रति (खंडित) उपलब्ध हुई जिसमें प्रत्येक श्लोक के पूर्व उसके बीजमंत्र का उल्लेख है। इस पुस्तक की प्राप्ति से 'तंत्रदुर्गासप्तशती' के बारे में मेरे मन में घुमड़ रहे प्रमाणिकता/अप्रमाणिकता विषयक संशय–मेघ छट गये।

पं० गिरीशचन्द्र वाली प्रति प्राप्त होने पर पं०शिवदत्त शास्त्री की प्रति की फोटोस्टेट की कमियां दूर करने में बहुत मदद मिली, साथ ही

दोनों प्रतियों के बीजमंत्रों का मिलान करके पाठान्तरों के उल्लेख का अवसर भी प्राप्त हुआ। मैंने पं॰ शिवदत्त वाली प्रति को 'क पुस्तक' तथा पं॰ गिरीशचन्द्र' की पुस्तक को 'ख पुस्तक' नाम देकर यथोचित पाठसंशोधन और पाठभेदों का उल्लेख करके पुस्तक को यथाशक्ति शुद्ध और प्रामाणिक रूप देने का प्रयास किया।

प्रकाशन के लिए जब पुस्तक तैयार कर ली गई तो प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् श्री भैरव प्रसाद 'दीप' से 'सप्तशतीमंत्र' नामक एक प्राचीन लघु पुस्तक की फोटोस्टेट प्रति उपलब्ध हुई, जिसमें तंत्रदुर्गासप्तशती के बीजमंत्र हैं। इस पुस्तक का यत्किंचित् उपयोग फुटनोट में 'ग पुस्तक' के संकेत के साथ मैंने किया है।

'तंत्रदुर्गासप्तशती' के कम्प्यूटर टंकण का कार्य अन्तिम रूप से समाप्त हो जाने पर मेरे सौभाग्य से द्वारिका एवं ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य स्वामी श्री स्वरूपानन्द जी हरिद्वार आये तो मैंने यह पुस्तक उन्हें दिखाई। पूज्य श्री शंकराचार्य जी के विचार पाठक इस पुस्तक में 'आशीर्वचन' के रूप में देख सकते हैं।

इसी स्थल पर आभार प्रदर्शित करना भी आवश्यक है। आभार प्रदर्शन केवल 'प्रदर्शन' नहीं है, मेरे लिए। यह महान् गुरुओं, साथियों और सहयोगियों के प्रति मेरी विनत कृतज्ञता है। क्योंकि इस पुस्तक में जो कुछ है, वह इन्हीं सबका है, मेरा कुछ नहीं—'इदं न मम'।

इसी भावना के साथ मैं अपने महान् गुरुद्वय परम पूज्य ब्रह्मलीन स्वामी श्री स्वयंज्योति तीर्थ जी (ज्ञानसाधन आश्रम, भरुच) तथा शक्तिपात दीक्षागुरु प्रातः स्मरणीय महान् योगी ब्रह्मलीन स्वामी श्री विष्णु तीर्थ जी (देवास) की अहैतुकी कृपा के लिये कृतज्ञ हूं। इन महान् गुरुजनों के आशीष के बिना मेरा समस्त शास्त्रीय ज्ञान अर्थ की अनुभूति से रहित मात्र 'शब्द' ही रह जाता।

मैं आभारी पूज्यपाद जगत् गुरु शंकराचार्य स्वामी श्री स्वरूपानन्द सरस्वती का भी हूं, जिन्होंने पुस्तक की आशीर्वादात्मक प्रस्तावना लिख कर मुझे अनुगृहीत किया। मैं आभारी हूं डॉ॰ प्रो॰ विष्णुदत्त राकेश का पुस्तक की 'प्ररोचना' और उनकी संशयोच्छेदिप्रेरणा के लिए।

श्री देव स्वामी (मंगल आश्रम कनखल) और श्री कल्याणानन्द

सरस्वती (मानव कल्याण आश्रम कनखल) की सारस्वत कृपा के लिए भी मैं आभारी हूं, जिसके बिना आचार्य भगवत्पाद का आशीर्वाद मिलना संभव न था।

आनन्द टेंट हाउस के स्वामी श्री सुरेश आनन्द का आभारी हूं। इसलिए कि वे ही भगवती की कृपाधारा (तंत्रदुर्गासप्तशती) मुझ तक लाने के माध्यम बने।

भगवती दुर्गा डॉ॰ मधुसूदन शर्मा के माध्यम से मुझे निरन्तर प्रेरित–उत्साहित करती रही हैं। पुस्तक की प्रामाणिकता के बारे में बार–बार हृदय को कुरेद रहे संशय कीट को ध्वस्त करने के लिये भगवती ने डॉ॰ शर्मा के द्वारा पं॰ गिरीश चन्द्र, को घर पर ला खड़ा कर किया। डॉ॰ मधुसूदन शर्मा की सतत–सक्रिय प्रेरणा के बिना पुस्तक का प्रकाशन संभव न हो पाता। मैं डॉ॰ शर्मा का हृदय से आभारी हूं।

इसी स्थल पर मैं श्री ईश्वर दत्त जी के प्रति भी अपना आभार व्यक्त करता हूं, जिनके कारण 'प्रवर्तितः दीप इव प्रदीपात्' की परम्परा सरणि से पं॰ गिरीशचन्द्र से संपर्क हुआ। डॉ॰ टी॰ आर॰ सिंह के सहयोग के लिये भी मैं कृतज्ञ हूँ।

'बिग बाईट कम्प्यूटर्स' के नीरज रूहेला एवं उनकी धर्मपत्नी श्रीमती बृजमोहनी के प्रति आभारी हूँ ,जो अनेक दबावों के बावजूद 'तंत्रदुर्गासप्तशती' का टंकण करके पुस्तक को शुद्ध रूप में लाने के लिये श्रेय के भागी हैं।

भगवती महागौरी की आनन्द–लहरी की लघु सिहरन, (जिसके बिना यह जन 'अर्धबृगल' ही रह जाता) अपनी अर्धांगिनी मीरा के प्रति आभार व्यक्त करना केवल औपचारिकता ही होगी। वास्तव में, इस पुस्तक के सम्पादन का बहुत सारा श्रेय मीरा को ही जाता है, मैं तो निमित्त भर रहा हूँ।

रामचन्द्र पुरी

आशीर्वचनम्

हमारे वैदिक साहित्य में तीन कांड हैं, कर्म–कांड, उपासना–कांड और ज्ञान–कांड। कर्म–कांड दो भागों में विभाजित है। जैसे कुछ कर्म कल्प–सूत्रों के आधार पर ब्राह्मण ग्रन्थों में विधान के अनुसार वैदिक देवता और द्रव्य के साथ विस्तार से वर्णित हैं, उसी प्रकार वेदानुकूल तंत्रों के आधार पर विविध यज्ञों के रूप में भी उनका विस्तार किया गया है। उनके द्रव्य और देवता तंत्रानुसारी हैं।

तंत्र में तीन विषय मुख्य माने जाते हैं– यंत्र, मंत्र और तंत्र। आवरण सहित देवता की उपासना का आलम्बन यंत्र, देवता का शब्दमय स्वरूप मंत्र और उपासना का विधान तंत्र कहलाता है।

वैदिक सनातन धर्म के प्रतिपादक ग्रंथ निगम और आगम हैं। अनादि अपौरुषेय शब्दराशि को निगम कहा जाता है तथा ईश्वर के द्वारा उपदिष्ट विधानों को तंत्र या आगम कहा जाता है। लोक में भी तंत्र शब्द का प्रयोग शासन के अर्थ में ही होता है, जैसे राजतंत्र, लोकतंत्र आदि। शिवप्रोक्त शासन का नाम ही तंत्र है। तंत्र का वाङ्मय अत्यन्त विस्तृत है।

मंत्रों में बीजाक्षरों का प्राधान्य होता है। अकार से लेकर क्षकार पर्यन्त सभी अक्षर मंत्र बन जाते हैं। यहाँ तक कि अ से लेकर अः तक स्वराक्षरों के मिश्रण से उन वर्णो के बीजाक्षरों के अनेक रूप बनते हैं। उनके उच्चारण से हमारे प्राणें में जो कंपन होता है, उससे अद्भुत आध्यात्मिक ऊर्ज़ा का सृजन होता है।

उपासना भी वैदिक तथा तांत्रिक दो भागों में विभक्त है। सनातन धर्म में जो भी उपासनाएँ चल रहीं हैं, वे मिश्र हैं। भगवान् श्री कृष्ण ने एकादश स्कन्ध में 'वैदिकी तांत्रिकी दीक्षा मदीयं व्रतधारणम्'

कह कर तंत्रों का समर्थन किया है। मन्दिरों में मूर्तियों के प्राण–प्रतिष्ठा के मंत्र तंत्रप्रोक्त ही हैं।

'देवो भूत्वा देवान् यजेत्' के सिद्धान्तानुसार उपासक भूसिद्धि, भूतसिद्धि तथा विविध न्यासों के द्वारा, जिनमें मातृका–न्यास, बहिश्चक्र–न्यास, अन्तश्चक्र–न्यास, सृष्टि–न्यास, स्थिति–न्यास, संहार–न्यास, षोढा–न्यास, तथा महाषोढा–न्यास मुख्य हैं, उपासना में प्रवृत्त होकर आत्म संस्कार करता है। इसी प्रकार पात्रासादन के द्वारा पूजाद्रव्यों के संस्कार का विधान है।

पात्रों में वर्द्धनीकलश, सामान्यार्घ्य, विशेषार्घ्य, गुरुपात्र तथा आत्मपात्र का संस्कार करके अन्तर्याग, इष्टदेवता का ध्यान, आवाहन, चतुष्षष्ठि उपचार पूजा, आवारण–पूजा, मंत्रजप तथा स्तोत्रपाठ का क्रमशः अनुष्ठान किया जाता है। तदनन्तर बीजाक्षरों सहित स्तोत्रपाठ किया जाता है। स्तोत्रपाठ सीधा–सीधा भी होता है और बीजाक्षरों सहित भी होता है।

दुर्गासप्तशती का बीजात्मक रूप तथा प्रचलित दुर्गासप्तशती का बीजाक्षरों सहित स्वरूप जो उपासकों में परम्परा से अनुष्ठित होता रहा है और जो गुरुमुखैक संवेद्य रहा है तथा इसी प्रकार के अन्य विषयों का अत्यन्त परिश्रम द्वारा अन्वेषण और तंत्रात्मक उपासना पद्धति के अत्यन्त दुलर्भ और गोपनीय विषयों को प्रकाशित करके डॉ० रामचन्द्र पुरी ने तंत्र के साधकों का उपकार किया है, जिसके लिए वे आशीर्वाद के पात्र हैं।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन से साधक प्रोत्साहित हों और आध्यात्मिक ऊर्जा सम्पन्न बनें, हमारी ऐसी शुभकामना है।

स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती
शंकराचार्य : द्वारिका एवं ज्योतिष्पीठ

प्ररोचना

श्री दुर्गा सप्तशती शाक्त साधकों का हृदय है। भोग और मोक्ष की सहज प्राप्ति के लिए शताब्दियों से साधक इस ग्रन्थरत्न का उपयोग करते रहे हैं। श्रुति, स्मृति तथा आगम प्रस्थान में भी सप्तशती का समान महत्त्व है, अतः समयाचारी तथा कौलाचार सम्पन्न साधक समान भाव से सप्तशती को साधना के लिए स्वतःप्रमाण मानकर श्रीदुर्गार्चन में प्रवृत्त होते रहे हैं।

दुर्गा नाम बड़ा महिमाशाली है। अथर्वशीर्ष श्रुति में 'दुर्गा देवीं शरणं प्रपद्यामहे' इसीलिए कहा गया है। रुद्रयामल तंत्रानुसार तो इसी पवित्र नाम का जप शिव भी करते हैं, वह पंचानन इसी नाम जापक रूप के कारण कहे भी जाते हैं–

दुर्गानाम जपो यस्य किं तस्य कथयामि ते,
अहं पञ्चाननः कान्ते तज्जापादेव सुव्रते।

भगवान् शिव के पाँचमुखों के नाम क्रमशः सद्योजात, वामदेव अघोर, तत्पुरुष तथा ईशान हैं। ये मुख मंत्रमय हैं, इन्हीं से शैवागमों तथा शाक्तागमों का उपदेश और विस्तार हुआ है। इन्हीं पञ्चमुखों से पञ्चाम्नायों का उद्भव हुआ। शिव को यह शक्ति दुर्गा के नाम जप के कारण ही मिली। 'गौरी त्वमेव शशिमौलिकृतप्रतिष्ठा' कहा भी गया है।

शाक्त उपासना और शक्तितत्त्व का निरूपण श्रुतियों में भी हुआ है। यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय में शक्तिकारणवाद का निरूपण हुआ है। आचार्य श्रेष्ठ श्री शंकराचार्य ने सौन्दर्यलहरी में स्पष्ट कहा था कि शक्तियुक्त ब्रह्म ही कार्य करने में समर्थ होता है, शक्ति के अभाव में वह कुछ भी नहीं कर सकता–

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं,
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।

इस प्रकार सम्पूर्ण दृश्य–अदृश्य शक्तिमय दिखाई पड़ता है। 'ईशावास्यमिदं सर्वम्' श्रुति की व्याख्या करते हुए शाक्ताचार्य श्री जगन्नाथ तर्कपञ्चानन ने

ब्रह्मसूत्र भाष्य में पराशक्ति का प्रसार सम्पूर्ण विश्व में माना है। वह 'ईशावास्यम्' का अर्थ 'ईशाया आवास्यम्' अर्थात् 'पराशक्तिरूप परब्रह्म का आवास है यह सम्पूर्ण संसार', ऐसा करते हैं। अतः जो कुछ भी जगत् में उपलब्ध है, उसका उपयोग त्यागपूर्वक करनेवाला, उसे प्रसादरूप में ग्रहण करने वाला साधक ही पराम्बा की कृपा प्राप्त करता है। कीलक में इसी भाव को अधिक स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि जो साधक शाक्त दीक्षा लेकर कृष्णपक्ष की चतुर्दशी अथवा अष्टमी को एकाग्रचित्त होकर भगवती की सेवा में स्व अर्जित–संचित सर्वस्व समर्पित कर देता है तथा फिर उससे अधिकार हटा प्रसादरूप से भोगार्थ ग्रहण करता है, उसी पर भगवती प्रसन्न होती हैं, अन्यथा उनकी प्रसन्नता नहीं प्राप्त होती–

कृष्णायां वा चतुर्दश्यामष्टम्यां वा समाहितः,
ददाति प्रतिगृह्णाति नान्यथैषा प्रसीदति।

सप्तशती के तीन चरित्रों प्रथम, मध्यम तथा उत्तम में क्रमशः महाकाली, महालक्ष्मी तथा महासरस्वती की लीलाओं का निरूपण किया गया है। वेद में इन्हें अम्बा, अम्बिका तथा अम्बालिका नामों से सम्बोधित किया गया है। सप्तशती के प्रत्येक अध्याय के अन्त में यजुर्वेद (२३/१५) की इस श्रुति से आहुति देने का विधान है–

अम्बे ऽअम्बिके ऽम्बालिके न मा नयति कश्चन।
ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम्।

उव्वट तथा महीधर ने इस मंत्र का विनियोग अश्वमेध प्रकरण में करते हुए जो अर्थ किया है, वह शाक्तभावना से मेल नहीं खाता। मेरी दृष्टि में अम्बा भू स्थानीय अग्नितत्त्व की वाचिका हैं, अम्बिका भुवःस्थानीय वायुतत्त्व की वाचिका हैं तथा अम्बालिका स्वःस्थानीय सूर्यतत्त्व की वाचिका हैं। प्रथम ऋग्वेद स्वरूपिणी, द्वितीय यजुर्वेद स्वरूपिणी तथा तृतीय सामवेद स्वरूपिणी देवी के रूप में प्रतिष्ठित हैं। सप्तशती के चतुर्थ अध्याय में देवताओं ने प्रार्थना करते हुए कहा भी है–

शब्दात्मिका सुविमलर्ग्यजुषां निधान–मुद्गीथरम्यपदपाठवतां च साम्नाम्।
देवी त्रयी भगवती भव भावनाय, वार्ता च सर्वजगतां परमार्तिहन्त्री।

अर्थात् आप शब्द रूपा हैं, अत्यन्त निर्मल ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा उद्गीथ के

मनोहर पदों के पाठ से युक्त सामवेद का भी आधार आप हैं। आप देवी त्रयी (तीनों वेद) और भगवती (छहों ऐश्वर्यों से युक्त) हैं। इस विश्व की उत्पत्ति तथा पालन के लिए आप वार्ता के रूप में प्रकट हुई हैं तथा आप सम्पूर्ण जगत् की पीड़ा को नष्ट कर देती हैं। यही कारण है कि सप्तशती के प्रथम चरित्र के विनियोग में अग्नितत्त्व, मध्यम चरित्र के विनयोग में वायुतत्त्व तथा उत्तम चरित्र के विनियोग में सूर्यतत्त्व की चर्चा क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद के संदर्भ से की गई है। यह समझ लेने के बाद उक्त मंत्र का अर्थ होगा—

हे भूः स्थानीय प्राणाग्निरूपे अम्बे! हे भुवः स्थानीयापानमातारिश्वरूपिणि अम्बिके! हे स्वः स्थानीयव्यानादित्यरूपिणि अम्बालिके! अहं तवाक्षयकृपां लब्धुं प्रणतोऽस्मि। भवच्चरणेषु सर्वात्मना समर्पितं माम् (मा) कोऽपि कदर्यः कुत्सितमना सांसारिकः (श्वकः) मोक्षमार्गात् पृथक् कर्तुं न पारयति (न नयति)। यथा अनित्यसंसारविज्ञातः परमात्मनिष्ठः मुमुक्षुः पुरुषः (न श्वः अश्वः; अश्वः एव अश्वकः आत्मसाक्षात्कारसम्पन्नः अद्वैतनिष्ठः) कल्याणकारिणीम् (सुभद्रिकाम्) मणिद्वीपनिवासिनीम् (काम्पीलवासिनीम्) अथवा चित्रविचित्रदुकूलोपेताम् मोक्षाधिष्ठात्रीम् देवीम् अतिशयेन प्राप्नोति (ससस्ति), तथैव अहमपि मातुर्भक्तोऽस्मि, फलस्वरूपेण देव्यनुग्रहं शीघ्रं पश्यामि, करुणामयि अम्बे मयि दयां कुरु। तवाशीर्वादेन, अक्षयानुग्रहेण सर्वं सिद्धं भविष्यति, यतोहि अध्यात्मतत्त्वसाक्षात्कारलब्धये तव कृपैव हेतुः— **'यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्', 'सा ब्रह्मेति होवाच' इति श्रुते।'**

वैकृतिक रहस्य में 'उन्हें चित्रमाल्याम्बर विभूषणा तथा श्रुति में काम्पीलवासिनी कहा गया है। डॉ॰ सूर्यकान्त जी ने वैदिक कोश में काम्पीलवासिनी का अर्थ चित्रविचित्र दुकूल धारण करने वाली किया है। **'नागेन्द्र प्रयाण तंत्र'** के 'भवानी भैरवी भीमा भद्रकाली सुभद्रिका' वचन में उन्हें सुभद्रिका भी कहा गया है। अतः कहा जा सकता है कि सुभद्रिका नाम भी वेदोक्त तथा तन्त्रोक्त दोनों है।

कहना यह कि सप्तशती का विन्यास वेदोक्त तथा आगमोक्त परम्पराओं को ध्यान में रख कर किया गया है। उक्त मंत्र की भावना पूर्णतया शक्तिवादी है तथा आगमों में इसी का विस्तार हुआ है।

सप्तशती का बीजाक्षरों में रूपान्तरण भी आगमिक चिन्तन के कारण ही संभव हो सका । मध्यकाल में नागेश जैसे वैयाकरण आचार्य ने भी सप्तशती की व्याख्या की। इधर दुर्गासप्तशती पर प्रतीकात्मक दृष्टि से भी विचार किया जाने लगा है। तर्कपञ्चानन जी ने तो 'ब्रह्मसूत्र भाष्य' करते हुए सप्तशती को प्रमाणरूप से उद्धृत भी किया है।

सप्तशती के श्लोकों के समानान्तर बीजमंत्रात्मक पाठ की परम्परा भी साधकों में प्रचलित है। लगभग चौंतीस वर्ष पूर्व मिर्जापुर विन्ध्यवासिनी की यात्रा में मुझे एक पण्डित मिले थे, जो बीजमंत्रात्मक सप्तशती का पाठ तथा हवन करते थे। मैंने उसके बाद यह प्रयोग कहीं नहीं देखा और न ही कोई साधक इस धारा का मुझे मिला।

अभी कुछ मास पूर्व डॉ॰ रामचन्द्र पुरी सपत्नीक मेरे आवास पर आए। उन्होंने मुझे जब बीजमंत्रात्मक सप्तशती दिखाई तो मेरे आश्चर्य और आनन्द का ठिकाना न रहा। पराम्बा की प्रेरणा से उन्हें यह कृति मिली और बड़ी विद्वत्ता, श्रम तथा निष्ठा से उन्होंने इस कृति का सांगोपांग सम्पादन कर डाला। साधकों के कल्याणार्थ उनकी यह कृति प्रकाशित भी हो रही है, यह बात और भी सुखकारी है। औपनिषदिक चिन्तन के परिप्रेक्ष्य में उन्होंने शाक्तदर्शन की जिन बारीकियों पर प्रकाश डाला है, उससे शक्तिकारणवाद का वैदिक आधार और भी पुष्ट हो गया है।

अन्त में, मै डॉ॰ पुरी को इस यज्ञानुष्ठान के लिए आशीर्वाद तथा बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि इस दिशा में वह आगे भी कुछ और करते रहेंगे।

आचार्य डॉ॰ विष्णुदत्त राकेश
ईशान, भगवन्त पुरम्, कनखल (हरिद्वार)
दूरभाष — ४१४९९४

तम आसीत् तमसा गूढमग्रे ..

भगवती दुर्गा महामाया सृष्टि की बीज हैं, वह जगत् की आदि कारण हैं, इस तथ्य का साक्षात्कार वैदिक ऋषियों ने किया था। ऋग्वेद में सृष्टि का रहस्य उद्‌घाटित करने वाला एक सूक्त है– 'नासदीयसूक्त'। इस सूक्त की ऋचाओं के द्रष्टा ऋषि ने कहा था–

'सृष्टि के आदि में न असत् था और न सत्
तब न मृत्यु थी और ना ही अमृत,
न रात और न दिन।
पर कुछ न कुछ गहन दुविर्ज्ञेय जरूर था। क्या था वह? कोई आवरण, कुहरा या अन्धकार ? कुछ कहा नहीं जा सकता।

हां, था कुछ प्राणवान्, किन्तु बिना वायु के ही। वह अपनी महिमा में प्रतिष्ठित अकेला ही था। वास्तव में, उसके अलावा अन्य कुछ नहीं था।

पर वह क्या था ? वास्तव में, सबसे पहले 'तमस्' था। यह सब कुछ तम ही तो था, अप्रकेत नामरूपरहित केवल तमस्। वह तमस् तमस् से ही आवृत था।[१]

---

1. नासदासी न्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्म न्नम्भः किमासीद् गहनं गभीरम्।
न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्मा द्धान्यन्न परः किंचनास।
तम आसीत् तमसा गूढमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्। १०/१२९/१–३०

ऋग्वेदीय नासदीय सूक्त द्वारा नामरूपादिरहित जिस 'अप्रकेत तमस्' की ओर संकेत किया गया है, वह वही तामसी आदि शक्ति है, जिसने विष्णु अर्थात् विराट् विश्व को आच्छादित कर रखा था और जिसकी स्तुति ब्रह्मा ने की थी। वैदिक और तांत्रिक रात्रिसूक्त उसी शक्ति की महिमा के प्रतिपादक हैं।[२]

समस्त ब्रह्मांड में व्याप्त परशिव की यही आवरणात्मिका शक्ति वेदान्त प्रतिपादित माया है। इस मायाशक्ति का वाचक नाम या प्रणव 'ह्रीं' है। सृष्टि के लय काल में यही माया शक्ति 'ह्रीं' समस्त सृष्टि के बीज को अपनी कुक्षि में पालती हुई इसे सुरक्षित रखती है। इसीलिए तांत्रिक ग्रन्थों में इसे प्रतिपालिका (ह्रींकारी प्रतिपालिका) कहा गया है। यही महामाया जब सृष्टि की कामना करती है, तो इसका अभिधान या वाचक बीज 'क्लीं' होता है (क्लींकारी कामरूपिण्यै) और सृष्टि रचना में प्रवृत्त यही महाशक्ति 'ऐं' बीज से वाच्य (ऐंकारी सृष्टिरूपिण्यै) होती है।[३]

इस तरह महामाया स्वयं सृष्टि के रूप में अभिव्यक्त होती है, अपना पालन करती हुई स्वयं में स्थित रहती है और अन्त में स्वयं को स्वयं से आवृत करके अप्रकेत–नामरूपादिरहित–स्थित रहती है।

'तत्रं दुर्गासप्तशती' के समस्त बीजमंत्र महाशक्ति दुर्गा के ऐं, ह्रीं और क्लीं इन तीन महाबीजों के ही विस्तार हैं और 'दुर्गासप्तशती' के सात सौ मंत्रश्लोक इन्हीं बीजों के विविध श्लोकद्रुम। इन्ही श्लोकद्रुमों से भगवती महामाया की महती कथा अरण्यानी की सृष्टि हुई है। 'तत्रंदुर्गासप्तशती' की इस भूमिका में इसी गहन–गभीर अरण्यानी में बिलमने का प्रयास भर किया गया है। अरण्यानी का ओर–छोर तो नहीं, पर शीतल छाया इस जन को भरपूर मिली है।

२. दुर्गासप्तशती के वैदिक तथा तांत्रिक रात्रिसूक्त द्रष्टव्य।

३. कुंजिकास्तोत्रम्।

स य एषोऽणिमा

आरुणि ने श्वेतकेतु से वट का एक फल मंगाया और कहा– 'इसे तोड़ो।'

उसने तोड़ा।

आरुणि ने उससे पूछा– क्या है इसमें ?

भगवन्, छोटे– छोटे बीज।

इनमें से एक को तोड़ो।

तोड़ दिया भगवन् ।

इसमें क्या है ?

'कुछ नहीं' श्वेतकेतु ने कहा।

'इस अणु बीज में तुम यह जो 'कुछ नहीं' देख रहे हो, इसी 'कुछ नहीं' में एक विशाल वट वृक्ष छिपा हुआ है।[1] यह जो अदृश्य 'अणिमा' है, इसी में सारा जगत् है। इस अणु बीज में छिपी अदृश्य शक्ति 'अणिमा' ही विश्व के रूप में परिणत हुई – यह अणिमा ही आत्मा है, यह आत्मा तुम स्वयं हो, यही सत्य है।[2]

यह, वह 'कुछ नहीं' या अणिमा क्या है?

अणुओं में छिपी अव्यक्त शक्ति।

क्या यह 'कुछ नहीं' असत् था?

हाँ, यह 'अणिमा' असत् थी, लेकिन इस अर्थ में कि तब यह नामरूपात्मक सृष्टि के रूप में अभिव्यक्त न थी। अन्यथा कहीं असत् से सत् उत्पन्न हो सकता है क्या ?

---

१. यं वै सोम्यैतमणिमानं न निभालयसे
एतस्य वै सोम्यैषोऽणिम्नः महान् न्यग्रोध स्तिष्ठति ...। छान्दोग्योपनिषद् ६/१२/२

२. स य एषोऽणिमा, ऐतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं, स आत्मा, तत्त्वमसि श्वेतकेतो !
वही ६/१२/३

– कथं नु सोम्यैवं स्यात् ? कथमसतः सज्जायेत्?[३]

अणु बीज में अन्तर्निहित 'अणिमा' क्या बीज से भिन्न है?

नहीं, वह बीज की अनन्य शक्ति है। यही शक्ति बीज को विशाल वृक्ष के रूप में परिणत करती है। 'अणोरणीयान्' बीज को यही शक्ति 'महतो महीयान् वृक्ष' बनाती है।

इस अणुबीज की 'अणिमा', इसकी चित् शक्ति, जब तक सक्रिय नहीं होती, बीज अनन्त काल तक निर्विकार, अनभिव्यक्त, निष्क्रिय पड़ा रह सकता है। किन्तु, जैसे ही वह जग जाती है, बीज में स्पन्दन होता है, बीज के वृक्ष बनने की प्रक्रिया आरम्भ होती है, बीज वृक्ष बन जाता है।

अणु के भीतर जो अणिमा है, वह उसकी अपनी शक्ति है, उसका अपना 'स्वभाव' है। शक्ति और शक्तिमान् में अभेद है–शक्तिशक्तिमतो रभेदः।

किन्तु, अपनी चित् शक्ति इस 'अणिमा' की सक्रियता के बिना शक्तिमान् निरर्थक, निश्चेष्ट है। वह शक्ति के द्वारा ही संसार–वृक्ष के रूप में परिणत होता है। दूसरे शब्दों में उसकी चित् शक्ति ही विश्वरूप में परिणत होती है।[४] क्योंकि शक्तिमान् 'शिव' निर्विकार है, विश्व के रूप में परिणमन उसमें संभव नहीं। उसकी चिति स्वतंत्र है, शिव पराधीन। चिति में स्वतंत्र रूप से परिणमन आदि संभव है, शिव में नहीं। शिव यदि शक्ति से युक्त है, तभी वह सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोधान और अनुग्रह रूपी प्रपंचन कार्य में सफल होता है, अन्यथा वह केवल 'शव' है –

'शक्त्याः हीनः शिवः शवः।'

उस बीज में अन्तर्निहित प्रसुप्त अणिमा में स्पन्दन हुआ, एक व्यग्रता–जगी, एक सिसृक्षा हुई। उसने इच्छा की – मैं बहुत हो जाऊँ"[५] अपने को नाम और रूप में व्याकृत करूँ, अभिव्यक्त करूँ।[६]'

---

३. वही १२/२/२

४. त्वमेव स्वात्मानं परिणमयितुं विश्ववपुषा, चिदानन्दाकारं शिवयुवतिभावेन विमृशे।
सौन्दर्यलहरी–३४ ।

५. तदैच्छत बहु स्यां प्रजायेयेति. छान्दोग्य–६/२/३।

६. अनेनजीवेनात्मनाऽनुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि। वही–६/३/२।

वह चिति मनस् (होता या यजमान), अग्नि, जल, पृथ्वी, चित् (सूर्य) और आनन्द (चन्द्रमा) के रूप में परिणत हो गई। शक्ति के परिणमन विश्वाकार इस अष्टमूर्तियों के अलावा विश्व और कुछ भी नहीं है।[७] शक्ति की यह अष्टमूर्तियां ही शिव की प्रत्यक्ष अष्टमूर्तियां हैं।[८]

परम शिव की चित् शक्ति ही विश्वाकार में परिणत हुई, सृष्टि के बीज के रूप में वर्तमान शक्ति ही स्थूल–और सूक्ष्म रूप त्रैलोक्य के रूप में परिणत हुई। समस्त सृष्टि उसी की 'रूपात्मक' अभिव्यक्ति है।[९]

फिर प्रत्येक रूप के लिए भिन्न–भिन्न, अनन्त नाम। यह सब कुछ नाम ही तो है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, साम और अथर्व....इतिहास–पुराण आदि सब कुछ नाम ही है।[१०]

यह 'नाम' क्या है?

वाणी का केवल विकार, किसी भी रूप की प्रतीति का माध्यम। असली वस्तु तो 'रूप' है।[११]

किन्तु 'नाम' रूप के ज्ञान के लिए अत्यन्त आवश्यक है। वास्तव में, नाम और रूप एक ही वस्तु के दो पक्ष हैं। कहने को भिन्न, लेकिन, तत्त्वतः अभिन्न।[१२]

---

७. मनस्त्वं व्योम त्वं मरुदसि मरुत्सारथिरसि,
त्वमापस्त्वं भूमिस्त्वयि परिणतायां नहि परम्।
त्वमेव स्वात्मानं परिणमयितुं विश्ववपुषा,
चिदानन्दाकारं शिवयुवतिभावेन विमृशे ।। सौन्दर्यलहरी–३४

८. या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हवि र्या च होत्री,
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः।
प्रत्यक्षाभिः प्रसन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः। कालिदासः (अभिज्ञाने)
सूर्यो जलं मही वह्नि र्वायुराकाशमेव च।
दीक्षितो ब्राह्मणः सोमः इत्येता स्तनवः स्मृताः।। विष्णुपुराणे।

९. त्रिपुरा परमा शक्तिराद्यजाता महेश्वरी,
स्थूलसूक्ष्मस्वभावेन त्रैलोक्योत्पत्तिमातृका। चतुःशती,
(सौंदर्यलहरी पर नरसिंह स्वामिकृत गोपालसुन्दरी टीका से उद्धृत।)

१०. छान्दोग्य ७/१/४.

११. वाचारंभणं विकारो नामधेयम्, मृत्तिकेत्येव सत्यम्। छान्दोग्य ६/१/४.

१२. गिरा अरथ जलवीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न। तुलसी।
वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये। कालिदासः

नाम 'वाक्' है। और, यह जो कुछ, है वाक् रूप ही है। वाक् नाम का मूल है, सार है, नाम का आधार है।[१३]

वह अव्यक्त अणिमा नाम और रूप के द्वारा ही व्यक्त हुई—'यह नाम है और इस नाम का यह रूप' इस प्रकार से।[१४]

अतः प्रतिप्रसव (उलटे) क्रम से उस अव्यक्त चिदात्मा को अपने में व्यक्त करने का माध्यम भी नामरूप ही है। चिदात्मा पहले नाम— 'असौ नाम', फिर रूप—'अयमिदं रूपः' इस क्रम से अभिव्यक्त हुआ। अब, इसकी ओर लौटने का क्रम→रूप→नाम→और चिदात्मन् ही है। इस प्रकार रूप से नाम महत् है, क्योंकि वह आत्मन् के अधिक निकट है। रूप परिच्छिन्न है, नाम अपरिच्छिन्न।

तुलसी कहते हैं—

नाम रूप दुइ ईस उपाधी/अकथ अनादि सुसामुझि साधी।
को बड़ छोट कहत अपराधू/सुनि गुन—भेद समुझिहहिं साधू।
देखिअहिं रूप नाम आधीना/रूप ज्ञान नहिं नाम बिहूना।
रूप विशेष नाम बिनु जाने/करतलगत न परहिं पहिचाने।
सुमिरिअ नाम रूप बिन देखे/आवत हृदयँ सनेह विसेषें।

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा/अकथ अगाध अनादि अनूपा।
मोरें मत बड़ नाम दुहू तें/किए जेंहि जग निज बस निज बूतें।
उभय अगम जुग सुगम नाम तें/कहेउं नाम बड़ ब्रह्म राम तें।
सबरी गीध सुसेवकनि सुगति दीन्हि रघुनाथ।
नाम उधारे अमित खल बेद बिदित गुन गाथ।
राम भालु कपि कटक बटोरा/सेतु हेतु श्रम कीन्ह न थोरा।
नाम लेत भवसिन्धु सुखाहीं/करहु बिचार सुजन मनमाहीं।[१५]

---

१३. वाग् वाव नाम्नो भूयसी, वाग्वा ऋग्वेदं विज्ञापयति.... छान्दोग्य ७/२/१

** नाम वा ऋग्वेदो यजुर्वेद......वही ७/१/४

१४. तद् ह इदं तर्ह्यव्याकृतमासीत्। तन्नामरूपाभ्यामेव व्याक्रियत असौ नामायमिदं रूपः इति। बृहदारण्यकोपनिषद् अध्याय—१, ब्राह्मण—४ मंत्र—७

१५. रामचरितमानस (बालकाण्ड)

प्रपंचात्मक जगत् का ज्ञान नाम के अधीन है। नाम वाक् पर निर्भर है। यह 'वाक्' स्वयं परमेश्वरी है। वाक् से प्रतिपाद्य समस्त अर्थ स्वयं शिव हैं। ये दोनों परस्पर संपृक्त अर्धनारीश्वर रूप हैं–

वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ।[१६]

वाक् और अर्थ, शिव और शक्ति कहने भर के लिए भिन्न हैं, वास्तव में, भिन्न हैं नहीं। ये जल और तरंग की तरह कहने, सुनने और देखने में भिन्न हैं, लेकिन तत्त्वतः अभिन्न हैं–

गिरा–अरथ जलवीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।
वन्दउं सीतारामपद जिनहिं परम प्रिय खिन्न।।[१७]

परस्पर संश्लिष्ट शिव और शक्ति के "वाक् वपुष्" (वाङ्मय शरीर) के दो बाह्य भेद हैं– स्वर और व्यंजन। सभी सोलह स्वर शक्ति स्वरूप हैं और सभी ३५ व्यंजन शिव स्वरूप। इन्हीं के परस्पर संश्लेष से नामरूपात्मक समस्त सृष्टि की अभिव्यक्ति होती है। इनमें शक्तिस्वरूप स्वर स्वतंत्र हैं और शिवस्वरूप व्यंजन शक्त्याश्रित या स्वराश्रित, अतएव परतंत्र।[१८] शक्त्यात्मक सोलह स्वर निम्नांकित हैं:–

अ	आ	इ	ई
उ	ऊ	ऋ	ॠ
ऌ	ॡ	ए	ऐ
ओ	औ	अं(ं)	अः(ः)

१६. रघुवंश – १/१ कालिदास
१७. रामचरितमानस (बालकाण्ड)
१८. ककारादिक्षकारान्ता वर्णा स्ते शिवरूपिणः।
समस्तव्यस्तरूपेण षट्त्रिंशत्तत्त्वविग्रहः।
अकारादिविसर्गान्ताः स्वराः षोडश शक्तयः।
नित्याः षोडषकात्मानः परस्परं समायुताः।
शिवशक्तिमया वर्णाः शब्दार्थप्रतिपादकाः,
शिवः स्वरपराधीनो न स्वतंत्रः कथंचन।
स्वराः स्वत्रंता जायन्ते न शिवस्तु कदाचन।
(मातृकादूषण) गोपालसुन्दरी से उद्धृत।

पैंतीस व्यंजन निम्नांकित हैं :–

क्	ख्	ग्	घ्	ङ् ।
च्	छ्	ज्	झ्	ञ् ।
ट्	ठ्	ड्	ढ्	ण् ।
त्	थ्	द्	ध्	न् ।
प्	फ्	ब्	भ्	म् ।
य्	र्	ल्	व्	श् ।
स्	ष्	ळ्	ह्	क्ष् ।

ये स्वर–व्यंजन 'वाग्वपु' शिव–शक्ति के स्वरूप हैं। ये नामात्मक जगत् के बीज हैं। ये बीजाक्षर हैं। इनमें निहित शक्ति ही विश्ववपु चिदात्मतत्त्व का बोध कराती है।

किसी शब्द में निहित शक्ति ही उस शब्द के वाच्य–अर्थ का ज्ञान कराती है। वैशेषिकों के अनुसार – 'इस पद–विशेष से इस अर्थ–विशेष को जाना जाय, ऐसा ईश्वर का संकेत ही शक्ति है।[१९]

जिस प्रकार किसी शब्द विशेष से अर्थ विशेष का ज्ञान होता है, उसी प्रकार स्वरव्यंजनात्मक वर्ण विशेषों से उनमें निहित 'शक्ति' के द्वारा अर्थ विशेषों का ज्ञान होता है। इस तरह एक–एक वर्ण के भी अपने अर्थ होते हैं।

जिस तरह सम्पूर्ण वस्तु–जगत् अव्यक्त बीजरूप में स्थित शिव–शक्ति का संयुक्त परिणमन है, उसी प्रकार स्वर–व्यंजनों का संयुक्त बीजरूप 'परावाक्' विश्व की निखिल वस्तुओं के नाम का बीज है।

इस लौकिक सृष्टि में ऐसा कोई प्रत्यय, पदार्थ या वस्तु नहीं, जिसे शब्द के बिना जाना जा सके। माला की अनेक मणियों के बीच सूत्र की तरह सब कुछ शब्द से गुंफित है, अनुस्यूत है।[२०] नाम हो या आख्यात उपसर्ग हो या निपात सभी कुछ शब्द हैं।

ऐसा कोई शब्द नहीं, जो स्वर–व्यंजन रूप वर्ण या वर्णों से रहित हो तथा ऐसा कोई अर्थ या प्रत्यय नहीं जो स्वर–व्यंजनात्मक वर्ण या वर्ण

---

१९. अस्मात् पदादयमर्थो बोधव्य इति ईश्वरसंकेतः शक्तिः। तर्कसंग्रहः

२०. न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते।
अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते।। वाक्यपदीयम् –१/१२/३

—समूह से गम्य न हो। वास्तव में, यह सब कुछ बीज रूप से 'वाक्' है। सब कुछ वाङ्मय ही है। वाग्बीज विश्वबीज है।

यह सारी सृष्टि ऊर्ध्वमूल अधःशाखा वाला अश्वत्थ है। इस संसार—रूप अश्वत्थ का बीज ईश्वर, ब्रह्म या शिव है। महद् (प्रकृति) उसकी योनि (माँ) है और परात्मा शिव बीजप्रद पिता।[२१] इस अश्वत्थ रूपी महान् वृक्ष (सृष्टि) के बीज का वाग्—रूप 'ओम्' है। यह 'ओम्' ही उस अणिमा, उस 'कुछ नहीं' से अभिव्यक्त 'सब कुछ' है। वह जो भूत था, यह जो वर्तमान है, हो रहा है, जो भविष्यत्—होने वाला है, इसके अलावा जो कुछ भी त्रिकालातीत है, वह भी 'ओम्' ही है।[२२]

यह 'वाङ्मय ओम् बीज' ईश्वर का नाम है, उसका वाचक है। ब्रह्म इसका वाच्य है।[२३] ओम् वाक् है, ब्रह्म उसका अर्थ है। ये दो नहीं, जल—तरंग की तरह अभिन्न एवं एक हैं। विश्व के समस्त वागर्थ के ज्ञान के लिए 'वागर्थप्रतिपत्तये' ईश्वर के नाम ओं बीज को ईश्वर की भावना करते हुए जपना चाहिए।[२४] वेदादि समस्त वाङ्मय इसी ओम् का प्रतिपादन करते हैं, संसार के सभी कर्म इसी के लिए हैं, समस्त अध्यात्म विद्या के उपासक इसी की उपासना करते हैं। यह अक्षर ब्रह्म है, यही अक्षर परात्पर है। इसे जानकर व्यक्ति जो भी चाहता है, उसे वह मिलता है।[२५]

नाम (ओम्) और नामी (ब्रह्म) में अभेद है। ओम् भूमा है। जो भूमा है, वही सुख है। अल्प, परिच्छिन्न या सीमित में सुख कहाँ? इसलिए आनंद, सुख या आत्मशांति प्राप्त करने के लिये 'ओम्' इस ईश्वर के वाचक प्रणव बीज का जप करना चाहिए।

२१. सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः संभवन्ति याः।।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता। — श्रीमद्भगवद् गीता १४/३४

२२. ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतंभवद्भविष्यदिति सर्वमोंकार एव। यच्चान्यत्किंचित्त्रिकालातीतं तदप्योंकार एव। — मुंडकोपनिषद्—१

२३. तस्य वाचकः प्रणवः। — पातंजलयोगदर्शनम् १/१७

२४. तज्जपस्तदर्थभावनम्। — वही १/२८

२५. सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति, तपांसि सर्वाणि च यद् वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति, तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमेतत्।
एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम्।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्।।

कठोपनिषद्—वल्ली—२, मंत्र—१५—१६

ओम् बीज है। वट बीज की तरह। वट के अणु बीज में उसका आवरण (छिलका) दल और अंकुर ये तीन तत्त्व होते हैं। आवरण को हटाएं तो द्विदल दिखाई देते हैं, द्विदल को अलग करें, तो उनके बीच अंकुर दिखाई देगा। इस अंकुर को तोड़िये, तो उसके अन्दर 'कुछ नहीं' मिलेगा। यह 'कुछ नहीं' ही इस अणु बीज की शक्ति, 'अणिमा' है। यह अणिमा ही अणु–बीज को विशाल वट वृक्ष के रूप में परिणत करती है।

'ओम्' इस अणु–बीज में अ , इ तथा उ तीन अक्षर हैं। ये क्रमशः आवरण, दल और अंकुर हैं। इनके अलावा इस ओम् में एक अनिर्देश्य, अव्यवहार्थ, अग्राह्य चतुर्थ मात्रा भी है। यह चतुर्थ मात्रा ही अ उ और म् बीज में छिपी वह अव्यक्त 'अणिमा' है, जो इस बीज ओम् को विश्वाकार का वाचक बनाती है। यह 'अणिमा' प्रपंचोपशमं, शिव, अद्वैत, आत्मशक्ति, पर शिव है।[२६]

ओम् तो केवल वाचक है, नाम है। इसका वाच्य है ब्रह्म। यह ब्रह्म क्या है?

जहाँ से ये सभी प्रपंच उत्पन्न होता है, जिसमें स्थित रहता है और अन्त में जिसमें समा जाता है वही 'ब्रह्म' है।[२७]

ओम् से चराचर जगत् की उत्पत्ति हुई है—ओंकारप्रभवं सर्वं त्रैलोक्यं चराचरम्।[२८] इसकी चार मात्राओं में से – अ उ म् ये तीन मात्राएं अखिल सृष्टि की वाचक हैं – चतुर्थ मात्रा (अनुस्वार) विश्वोत्तीर्ण है। इसे यूं समझें –

अ	उ	म्	अमात्रिक(बिन्दु)
पृथ्वी	अन्तरिक्ष	द्यौः	विश्वोत्तीर्ण
अग्नि	यजुर्वेद	सूर्य	
ऋग्वेद	भुवः	सामवेद	

२६. अमात्र श्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपंचोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोंकार आत्मैव....
मांडूक्योपनिषद्–१२

२७. यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद् विजिज्ञासस्व। तद् ब्रह्म।
तैत्तिरीयोपनिषद्, भृगुवल्ली–अनुवाक–१

२८. ध्यानबिंदूपनिषद् –१६

भूर्लोक	विष्णु	स्वर्लोक	
पितामह (ब्रह्मा)		महेश्वर	
रजस्	सत्त्व	तमस्	निगुर्ण

ओंकार की प्रथम तीन मात्राएं परात्पर चतुर्थ मात्रा का केवल पाद (चतुर्थांश) मात्र हैं। इन्हीं तीन मात्राओं या चतुर्थांश में चराचर जगत् है। इसके तीन पाद विश्व से परे (दिवि) अमृत रूप हैं।[२९]

वाचक ओंकार के चार पादों की भाँति ही इसके वाच्य आत्मा के भी चार पाद हैं–

वैश्वानर, तैजस्, प्राज्ञ और प्रपंचोपशम शिव।

वैश्वानर की अभिव्यक्ति जाग्रत् अवस्था में होती है। यह 'बहिःप्रज्ञ' है, अर्थात् बाह्य विषयों का प्रकाशक है। यदि इस वैश्वानर आत्मा को पुरुषरूप माना जाय, तो इसके सात अंगों में, सिर द्युर्लोक है, नेत्र सूर्य है, प्राण वायु है, देह आकाश है, वस्ति जल (सागर) है और चरण यह पृथ्वी है।

यह वैश्वानर आत्मा उन्नीस मुखों वाला है। ये मुख हैं –

५ ज्ञानेन्द्रियां,५ कर्मेन्द्रियां, ५ प्राण और ४ मनस्, बुद्धि, अहंकार तथा चित्त। इन उन्नीस मुखों द्वारा यह बाहरी (भौतिक) विषयों को भोगता है।

आत्मा का द्वितीय पाद तैजस् कहलाता है। यह स्वप्न लोक का स्वामी है। यह अन्तःप्रज्ञ है। यह भी सप्तांग और उन्नीस मुखों वाला है और उनसे सूक्ष्म विषयों को भोगता है।

आत्मा का तृतीय पाद प्राज्ञ कहलाता है। यह सुषुप्ति का स्वामी है। यह प्रकाशमय तथा ज्ञानस्वरूप है और आनन्द का भोक्ता है। इसका मुख चेतस् (चेतना) है।

यह प्राज्ञात्मा अन्तर्यामी है, सर्वेश्वर है और सभी चेतन–अचेतन का उत्पत्ति और लयस्थान है।

आत्मा का चतुर्थ पाद न बहिःप्रज्ञ है और ना ही अन्तः प्रज्ञ। यह दोनों का मिलाजुला रूप (उभयात्मक) भी नहीं है। इसके अलावा न तो यह

२९. पादोस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि। ऋग्वेद – १०/९०/३

प्रज्ञानघन है, न प्रज्ञ और ना ही अप्रज्ञ।[३०]

आत्मा का यह चतुर्थ पाद अदृष्ट, अव्यवहार्य, अग्राह्य, अलक्षण, अचिन्त्य, अव्यपदेश्य, प्रपंचोपशम, एकात्मप्रत्ययसार, शान्त, शिव और अद्वैत है।

यह चतुर्थ पाद विश्व–वट के बीज की वही 'अणिमा' है, जिसमें सारा विश्ववट अन्तर्निहित है।

ओम् इसी ब्रह्म का वाचक बीज है। ब्रह्म या परम शिव अपनी अनन्य परा शक्ति से पृथक् नहीं। इसलिए उसका वाचक–बीज ओम् शक्ति का भी वाचक है।

ओम् के अ और उ शक्ति वाचक बीज हैं। म् और अदृष्ट चतुर्थ मात्रा (बिन्दु) शिव बीज हैं। क्योंकि सभी स्वर शक्त्यात्मक हैं और सभी व्यंजन शिवात्मक।[३१] जहां तक बिन्दु का प्रश्न है वह तो शिवमय ही है–अहं बिन्दु विंसर्गस्त्वं।[३२]

इस प्रकार 'ओम्' शिवशक्त्यात्मक बीज है। यह शिव और शक्ति दोनों का वाचक नाम है। शिव को शक्ति से अलग नहीं किया जा सकता। वह उभयात्मक है, अर्धनारीश्वर है। क्योंकि, अर्धनारीश्वर जगत् के माता–पिता हैं, इसलिए जगत् की प्रत्येक वस्तु स्त्री–पुरुषात्मक है। अन्तर है, तो केवल अभिव्यक्ति का। कभी उसका पुंस्त्व प्रधान हो जाता है और कभी स्त्रीत्व। पुंस्त्वप्रधानता से वह पुरुष है, और स्त्रीत्व की प्रधानता से स्त्री।[३३]

卐

---

३०. द्रष्टव्य–माण्डूक्योपनिषद्।

३१. ककारादिक्षकारान्ता वर्णास्ते शिवरूपिणः।
अकारादिविसर्गान्ताः स्वराः षोडष शक्तयः।। — गोपालसुन्दरी से उद्धृत

३२. शिवदृष्टिः ....वही

३३. त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी। — अथर्ववेद–१०/८/२७

गुहाहितम्

बीज मंत्रों की संयोजना वर्णों पर आधारित है। कुल वर्ण ५१ (सोलह स्वर तथा ३५ व्यंजन) हैं। इनमें प्रत्येक वर्ण कई अर्थों का वाचक होता है। फिर किसी भी वर्ण या शब्द से आप अपनी भावना के अनुसार किसी भी अर्थ का आहरण कर सकते हैं। क्योंकि, जहां वर्ण या शब्द कुछ निश्चित अर्थ के वाचक होते हैं, वहीं वे वक्ता और श्रोता की अपनी इच्छा के अनुसार भी अर्थ देते हैं। वाल्मीकि ने 'मरा–मरा' जप कर भी राम रूपी अर्थ प्राप्त किया था।

वस्तुतः, वर्णों (शब्दों) से अर्थ की प्रतीति या प्राप्ति का मुख्य आधार भावना ही है। इसीलिए महर्षि पतंजलि ने प्रणव (ओंकार) को ईश्वर का वाचक कहते हुए उसके जप के लिए उसकी भावना करने का निर्देश दिया है – 'तस्य वाचकः प्रणवः, तज्जपस्तदर्थभावनम् ।[१]

यदि एक बीज या मंत्र के कई देवता हैं, अर्थात् वह बीज या मंत्र कई देव–शक्तियों का वाचक है, तो उसके जप से, उसकी साधना से वही देवशक्ति आविर्भूत होगी, जप करते हुए जिसकी भावना की जायेगी।

मातृका (वर्णमाला) के प्रत्येक वर्ण अपने भीतर निखिल ब्रह्माण्ड के अनेक अर्थ छिपाये हुए हैं। एक–एक वर्ण कई–कई अर्थों के वाचक हैं। दैविक–साधना के सन्दर्भ में 'ओं' बीज समस्त सृष्टि, यहाँ तक कि समस्त सृष्टि से उत्तीर्णता का भी वाचक है। इस बीज के अ, उ, म् तथा बिन्दु किस तरह स्थूल, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय, विश्व, तैजस् प्राज्ञ और परब्रह्म आदि के वाचक हैं, इसका किंचित् संकेत पूर्व पृष्ठों में किया जा चुका है। लगभग सभी उपनिषदों, शास्त्रों, स्मृतियों, पुराणों और विभिन्न सांप्रदायिक ग्रन्थों में 'ओम्' की महिमा और इसकी व्याहृतियों (अ उ म् एवं अनुस्वार) का व्यापक विश्लेषण मिलता है।

१. योगदर्शनम् (समाधिपादः) २७–२८

'ओम्' इस मूल बीज मंत्र के अलावा अन्य अनगिनत बीज मंत्र हैं। इन सभी मंत्रों की निर्मिति बीजाक्षरों के योग से की गई है। बीजाक्षर मातृकाएं ही हैं। प्रत्येक मातृका के भिन्न–भिन्न कई अर्थ हैं। मंत्रसाधना में इनके मूल अर्थों की जानकारी आवश्यक है। क्योंकि, अर्थ जानकर ही उसकी भावना की जा सकती है और भावनापूर्वक जप करने से ही मंत्र (उसका देवता) फल प्रदान करता है।

प्रस्तुत प्रसंग में कठोपनिषद् के कुछ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बीजमंत्रों और उनकी मातृकाओं तथा अन्य बीजमंत्रों के बारे में लिखना उपयोगी रहेगा। क्योंकि मेरी धारणा है कि कठोपनिषद् में परब्रह्म, उसकी पराशक्ति तथा उसके बीज मंत्रों का रहस्यात्मक विवेचन किया गया है। यह रहस्य या तो गुरुगम्य है, अथवा जिस पर परतत्त्व की कृपा हो, वही इसे जान सकता है।

परम गुरु यमराज ने नचिकेता को इस रहस्य का उद्घाटन करते हुए कहा था कि 'उस परम तत्त्व के बारे में बहुतों को तो सुनने को भी नहीं मिलता, बहुत से ऐसे हैं जो उसके बारे में सुनकर भी नहीं समझते। वास्तव में, वह तत्त्व किसी कुशल आचार्य द्वारा ही निरूपित किया जा सकता है और उसे प्राप्त करने वाला शिष्य भी कोई अद्भुत व्यक्ति ही होता है'।[२]

इस तत्त्व के ज्ञान के लिए यमराज ने नचिकेता से कहा था कि 'उठो, जागो और श्रेष्ठ ज्ञानी पुरुषों के पास जाकर ज्ञान प्राप्त करो।[३]' 'सारे वेद जिस पद का प्रतिपादन करते हैं, समस्त तप जिसकी प्राप्ति के साधन हैं, जिसकी प्राप्ति के लिए ब्रह्मचर्य का पालन किया जाता

२. श्रवणायापि बहुभि र्यो न लभ्यः
शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः।
आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धा –
श्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः।। कठोपनिषद् – १/२/७

३. उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथ स्तत्कवयो वदन्ति। वही – १/३/१४

है, संक्षेप में वह पद 'ओम' है।[४]

यम ने नचिंकेता को पद (ओम्) के बारे में बताया था, पदार्थ (परतत्त्व) के बारे में नहीं। वह इसलिए कि पदार्थ (ब्रह्म) की अनुभूति पद (ओम्) की साधना के बिना संभव ही नहीं।

ओम् पद ब्रह्मरूपी पदार्थ का वाचक है –तस्य वाचकः प्रणवः। ओम् ब्रह्म का बीज नाम है। यम ने नचिकेता को इसी बीज का उपदेश दिया था। इस ओम् बीज से जिस अर्थ की अनुभूति होती है; वह केवल अनुभूतिगम्य है, उसे तर्क से नहीं जाना जा सकता। उसे प्रवचन, मेधा, (धारणा शक्ति) अथवा बहुज्ञता (बहुत श्रवण–पठन आदि) से भी नहीं जाना जा सकता।[५] उसे तो उसी आत्मा के प्रसाद से जाना जा सकता है, जिसकी साधना की जाती हैं। यह आत्मतत्त्व अपने साधक के लिए स्वयं अपने स्वरूप को अभिव्यक्त करता है।[६]

तात्पर्य यह कि आत्मतत्त्व की साधना में लगे साधक को स्वयं आत्मतत्त्व ही अपने स्वरूप का साक्षात्कार कराता है, कोई अन्य उसे नहीं करा सकता। उस आत्मतत्त्व, (ब्रह्म) की साधना के लिए उसका (वाचक) नाम ओम् ही सर्वाधिक महत्त्व का साधन है। इसी नाम से उसकी साधना करनी चाहिए। साधना का सर्वाधिक सरल रूप है जप–तज्जपस्तदर्थभावनम्।

ओंकार वाच्य यह परतत्त्व ब्रह्म अपनी ही आवरणात्मिका पराशक्ति से आवृत है। इस आवरण के भंग हुए बिना उसका साक्षात्कार संभव नहीं। ईशावास्योपनिषद् में इसी तथ्य की ओर इंगित करते हुए कहा गया है कि उस 'सत्य' का मुख हिरण्मय पात्र से ढका हुआ है –हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।[७] यह हिरण्मय पात्र परब्रह्म की अपनी आवरणात्मिका शक्ति माया ही है।

---

४. सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति, तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति, तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्। वही – १/२/१५

५. नैषा तर्केण मतिरापनेया प्रोक्तान्येनैव सुज्ञानाय श्रेष्ठ। वही – १/२/९

६. यमेवैष वृणुते तेन लभ्य स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूंस्वाम्। वही – १/२/२३

७. ईशोपनिषद् – १५

इसी तथ्य की ओर यम ने संकेत करते हुए कहा था कि 'वह दुर्दर्श परात्मा गुहा में गूढ़ रूप से अनुप्रविष्ट है।[८] तो, वह गुहा क्या है, जिसमें परतत्त्व अत्यन्त गोपनीय ढंग से स्थित है। आचार्य शंकर ने इस गुहा को 'बुद्धि' माना है।[९] लेकिन ऐसा है नहीं । क्योंकि 'नैषा तर्केण मतिरापनेया' न मेधया .....बुद्धेरात्मा महान् परः 'आदि के द्वारा परतत्त्व के बुद्धिगम्य होने का खण्डन स्वयं हो जाता है ।

यहां यद्यपि यम ने – दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः[१०] कहकर अग्र्या अर्थात् तीव्र शुद्ध बुद्धि से आत्मतत्त्व के प्रकाशित होने की बात कही है, लेकिन, यह अग्र्या–बुद्धि सामान्य बुद्धि नहीं, अपितु वह सूक्ष्म बुद्धि है, जो परतत्त्व पर पड़े हुए स्वर्णावरण को भेदकर उसे अनावृत कर देती है ।

जिस 'गुहा' में वह परतत्त्व निहित है, उसे गीता में 'योगमाया' कहा गया है–'नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमाया समावृतः'।[११] जिस तरह परतत्त्व का वाचक या अभिधान ओम् है, उसी तरह उसकी आवरणात्मिका योगमाया का भी कोई न कोई अभिधान या वाचक बीज होना चाहिए । वह है, और वह 'गुहा' शब्द से वाच्य 'ह्रीं' ही है । अथर्वशीर्ष, आचार्य शंकर और योगमाया के असंख्य साधक ह्रीं को ही 'मायाबीज' कहते हैं।[१२]

नचिकेता ने जिस परतत्त्व के बारे में जानना चाहा था, उसका वाचक पद यम ने 'ओम्' बताया था और वह परतत्त्व अपनी जिस माया के आवरण में ढका हुआ या गूढ़ है, उसे उन्होंने 'गुहा' कहा था । 'गुहा' का तात्पर्य पराशक्ति 'ह्रीं' ही है । इसी शक्ति की ओर सप्तशती के रात्रिसूक्त ने इंगित किया है ।[१३]

---

८. तं दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम्। — कठ–१/२/१२
९. 'गुहाहितं, गुहायां बुद्धौ स्थितं' — वही – शांकरभाष्य
१०. वही – १/३/१२
११. गीता – ७/२५
१२. अथर्वशीर्ष तथा सौन्दर्यलहरी आदि में द्रष्टव्य –
१३. त्वं श्री स्त्वमीश्वरी त्वं ह्री स्त्वं बुद्धि र्बोधलक्षणा ।। ८

यमराज ने परमतत्त्व 'ओम्' के बारे में नचिकेता को बताने से पहले ब्रह्म की आवरणत्मिका शक्ति गुहा (ह्रीं) के बारे में बताया था। उसके पश्चात् उसे भौतिक समृद्धि प्रदान करने वाली कई विद्याएं देने का प्रस्ताव भी किया, जिन्हें लेने से आत्मतत्त्व के जिज्ञासु नचिकेता ने मना कर दिया ।[१४]

यमराज ने स्वर्ग की साधनभूत जिस अग्नि (अग्निं स्वर्ग्यम्) की जानकारी नचिकेता को दी थी, वह इस गुहा की साधना ही है । इस ह्रीं की साधना से ही अमृतत्त्व या देवत्त्व की प्राप्ति होती है । आचार्य शंकर ने सौन्दर्यलहरी के 'भवानि त्वं दासे' श्लोक में इसी साधना की ओर इंगित किया है ।

नचिकेता द्वारा स्वर्ग की प्राप्ति कराने वाली गुहा–साधना का सांगोपांग ज्ञान प्राप्त कर लेने पर यमराज ने इहलौकिक अर्थात् भौतिक समृद्धि की प्राप्ति के लिए जो 'सृंका' नचिकेता को देनी चाही थी, वह कोई सामान्य माला नहीं थी। आचार्य शंकर ने अपने भाष्य में इसे– 'सृंकां शब्दवतीं रत्नमयीं मालामिमामनेकरूपां विचित्रां– यद्वा सृंकाम् अकुत्सितां गतिं कर्ममयीं' कहा है ।[१५]

वास्तव में , जिस प्रकार यम ने नचिकेता को ओम् तथा ह्रीं का रहस्य समझाकर उसे क्रमशः मुक्ति और स्वर्ग के साधनों का ज्ञान कराया था , उसी प्रकार भौतिक जगत् में प्रेयस् प्राप्ति के साधन के रहस्य भी बताने चाहे थे , लेकिन,नचिकेता ने उन्हें जानने के लिए कोई उत्सुकता नहीं दिखाई थी । यम ने नचिकेता से कहा था कि – 'सृंकां चेमाम् अनेकरूपां गृहाण' ।[१६] वस्तुतः, जिस प्रकार 'गुहा' शब्द से परमेश्वर की माया शक्ति 'ह्रीं' अभिप्रेत है, उसी प्रकार 'सृंकां चेमाम्' शब्दों से भी भौतिक–समृद्धि प्रदायिनी शक्तियों की ओर इंगित किया गया है। 'ह्रीं' जिस तरह मायाशक्ति का बीज है, उसी तरह –सृं,कां,चें और आं अथवा सृं कां (च) ईं, तथा आं भी वे बीज हैं, जिनकी साधना से

१४. नैतां सृंकां वित्तमयीमवाप्तो यस्यां मज्जन्ति बहवो मनुष्याः। कठ – १/२/३

१५. कठ १/१/१६ पर शांकरभाष्य

१६. वहीं – १/२/३

अपार भौतिक समृद्धि प्राप्त की जा सकती है ।

आचार्य शंकर ने भी 'सृंकाम्' को 'शब्दवर्ती'.विशेषण देकर शायद इसी रहस्य की ओर इंगित किया है । यम ने स्वयं 'सृंकां' को 'वित्तमयीम्' कहा है। तात्पर्य यह कि सृंकां को ग्रहण करने – अर्थात् उनकी साधना करने से प्रभूत संपत्ति की प्राप्त होती है ।

विचारणीय यह है कि कठोपनिषद् का 'सृं' कहीं भगवती श्री का वाचक बीज 'श्रीं' तो नहीं । यह संभव है । श्रीं का 'सृं' हो जाना असंभव नहीं । आचार्यों ने बीजाक्षरों को प्रायः गोपनीय रखा है। जैसे ह्रीं के लिए गुहा शब्द का प्रयोग हो सकता है, तो श्रीं के लिए सृं का क्यों नहीं ? फिर बीजाक्षर तो अनंत है । सृं अपने आप में श्री का वाचक बीज हो सकता है। सृं सृजन बीज हो सकता है – तदैच्छत बहुस्यां प्रजायेय ।[१७]

जहां तक 'कां' बीज का प्रश्न है, यह श्रीवाचक ही है । श्रीसूक्त में 'कां सोस्मिताम्' वाली ऋचा में 'कां' बीज स्पष्टतः भगवती श्री का प्रतिपादक है। यह कामना बीज भी हो सकता है – 'सोऽकामयत द्वितीयो म आत्मा जायेत' ।[१८]

चें, आम् और ईं भी भौतिक समृद्धिदायक विभिन्न शक्तियों के बीज हैं ।

卐

१७. छान्दोग्य – ६/२/३
१८. बृहदारण्यक – १/२/४

अदितिः देवतामयी

परम शिव का वाचक बीज ओम् है। ओम् की अकार, उकार, मकार और प्रपंचोपशप रूप चार मात्राओं में से अकार और उकार शिव की चित्–शक्ति और मकार तथा बिन्दु परम शिव के वाचक हैं। मकार तथा अनुस्वार (बिन्दु) का उच्चारण बिना स्वर शक्ति अकार और उकार के नहीं हो सकता, वे निष्क्रिय रहते हैं– 'शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुम्।'[1] फिर भी प्रधानता के कारण 'ओम्' परमतत्त्व का वाचक है। इसलिए कि अकार के उकार में, उकार के मकार में और मकार के चतुर्थमात्रिक ब्रह्म में लीन हो जाने से अन्ततः परमशिव ही शेष रहता है। किन्तु बीज रूप में शक्तितत्त्व भी उसमें अन्तर्निहित रहता है। और, यही चित् शक्ति प्रसव (सृष्टि) काल में स्वात्म भित्ति पर विश्व का उन्मीलन करती है।[2]

कठोपनिषद् इस चित् शक्ति को 'अदितिः' कहती है। अदिति का उन्मीलन प्राण (परम शिव) से होता है।[3] 'अदितिः' शब्द में 'अत्' 'इत्' 'इ'और विसर्ग (:) ये छः अक्षर या वर्ण हैं। इनमें अत् और इत् में से 'त्' का प्रयोग केवल स्वरूप (अ तथा इ) के प्रतिपादन के लिए हैं।[4] अर्थात् ये दोनों केवल अ और इ मात्र हैं। यहां एक अकार, दो इकार, तथा विसर्ग ये चार वर्ण ही अभिप्रेत हैं।

ये चारों ही वर्ण शक्ति के बीज हैं–'अ' ऐं का 'इ' ह्रीं का 'इ' क्लीं का और :(विसर्ग) श्रीं का प्रतीक है। क्योंकि अकार से लेकर विसर्ग तक सभी सोलह स्वर वर्ण शक्ति के 'स्व' वाचक बीज हैं।

१. सौन्दर्यलहरी। १

२. अभिनवगुप्त।

३. या प्राणेन संभवत्यदिति र्देवतामयी..
गुहां प्रविश्य तिष्ठन्ती या भूतेभि र्व्यजायंत। एतद् वै तत्। २/१/७

४. तपरस्तत्कालस्य। पाणिनिः १/१/७०

अथवा 'अदितिः' का अकार शिव रूप है और शिव स्वयं बिन्दु रूप–'अहं बिन्दुः।' दोनों इकार शक्ति रूप तो हैं ही, विसर्ग (:) भी शक्ति रूप ही है–'विसर्गः त्वम्'। इस प्रकार शक्ति त्रितय अर्थात् शक्ति के तीन रूपों (ऐं, ह्रीं तथा क्लीं) की अभिव्यक्ति होती है। इन तीनों में प्राण या शिवरूप अकार बिन्दु के रूप में स्थित है। तात्पर्य यह है कि – ऐ, क्ली, ह्री शक्ति बीजों की पूर्णता उनमें बिन्दु (अनुस्वार) द्वारा ही होती है। इसी प्रकार केवल बिन्दु (शिव) निष्क्रिय–स्पन्दहीन और निर्विकार रहता है। इन दोनों शिव और शक्ति बीजों के योग से ही विश्व का उन्मीलन (अभिव्यक्ति और वाच्यत्व) होता है।

देवी प्रणव 'ह्रीं'

निखिल देवतामयी अदिति का वाचक बीज 'ह्रीं' है। कठोपनिषद् के अनुसार यह 'गुहा' में स्थित है–गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तीम्। "देव्यथर्वशीर्ष[५] में इसे 'गुहा' ही कहा गया है। गुहा का तात्पर्य 'ह्रीं' से है। गुहा में प्रविष्ट होकर रहने का मतलब है कि वह शक्ति ह्रीं से वाच्य है, वह 'ह्रीं' बीज में प्रवेश किये हुए है, उसमें छिपी है। ह्रीं उसका वाचक है, ऐसे ही, जैसे ओम् परात्पर शिव का वाचक है।

अचिन्त्य वैभव सम्पन्न होने के कारण इसे ही 'माया' (बीज) कहा जाता है।[६] इसी को उपाधि बना कर शिव उत्पत्ति, स्थिति तथा लयादि प्रपंचन में समर्थ होता है। यह ईश्वर की मूल प्रकृति है। इसी को लक्ष्य करके–'प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया कहा' गया है।[७]

यह शक्ति प्राणिमात्र के हृदय में (विद्युत) लेखा की भांति निरंतर जागती रहती है, इसलिए इसे 'हृल्लेखा' भी कहते हैं।[८] यह हृल्लेखा शिव

५. कामोयोनिः ..... १४।

६. माया वाचिन्त्यवैभवात्।

७. गीता – ४/६

८. हृदि लेखेव जागर्ति प्राणशक्तिरियं परा।
हृल्लेखा कथ्यते तस्मान्माया वाचिन्त्यवैभवात्।
अनया रहिता सर्वे निर्बीजा मंत्रराशयः।
अतस्तु सर्वमंत्राणामियमुद्‌बोधिनी मता। (गोपालसुन्दरी से उद्धृत)

के साथ अभेदावस्था के कारण गीता में 'ईश्वर' पद से वाच्य है।[९] इस ह्ल्लेखा के माध्यम से ही परम शिव संसार की सभी जीवात्माओं को भ्रान्ति में डाले रहता है। यह ईश्वर की 'आत्ममाया' है, उसकी अभेद शक्ति है। ईश्वर की आत्ममाया होने के कारण ही इसे 'माया बीज' कहा जाता है।

इसी ह्रीं शक्ति के विषय में श्रुति ने कहा है– 'इन्द्र अपनी माया शक्ति से विभिन्न रूप धारण करता है।[१०] कठ की श्रुति भी इसी की ओर इंगित करती है– यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह[११] अर्थात् जो ह्ल्लेखारूप चित् शक्ति जीवोपाधि रूप परमेश्वर में है, वही परात्पर परमेश्वर में भी है। – क्योंकि, इस शरीर में जीवरूप में प्रविष्ट होने वाला परात्पर परमेश्वर ही है– अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि[१२] 'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्'।[१३]

अथर्वशीर्ष में शक्ति के ह्रीं बीज को सभी कामनाओं को देने वाला–'सर्वार्थसाधकम्' कहा गया है –

वियदीकारसंयुक्तं वीतिहोत्रसमन्वितम्।
अर्धेन्दुलसितं देव्या बीजं सर्वार्थसाधकम्।[१४]

अर्थात् –

वियत् = 'ह्'
ईकार = 'ई'
वीतिहोत्र = (अग्नि) 'र' तथा
अर्धेन्दु = अर्धचन्द्र (बिन्दु) युक्त = देवी का बीज 'ह्रीं' सर्वार्थ साधक है।

उपनिषद् कहती है कि जो भी साधक (ह्रदय) गुहा में तथा परम व्योम अर्थात् महाकाश में निहित इस परा शक्ति (ह्रीं) को जान लेता है, वह

९. ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया।। गीता – १८/६१
१०. रूपं रूपं प्रति रूपो बभूव .....इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते। बृहदारण्यक २/५/१९
११. कठ–२/१/१०
१२. छान्दोग्य–६/३/२
१३. तैत्तिरोयोपनिषद्–२/६/१
१४. अथर्वशीर्ष–१८

विद्वान् उस परम तत्त्व के साथ एकात्मकता (अहं ब्रह्मस्मि) के साथ ही सभी भोगों को भोगता है।[१५]

जिस प्रकार पराशक्ति के बिना शिव 'शव' है, निश्चेष्ट है, उसी तरह परतत्त्व शिव के वाचक समस्त मंत्र या नाम इस परा शक्ति 'ह्रीं' के बिना निश्चेष्ट, निष्फल और निर्बीज हैं – अनया रहिताः सर्वे निर्बीजा मंत्रराशयः।[१६] यही कारण है कि पंचदशाक्षरी श्रीविद्या के – वाग्भव, कामकला तथा शक्ति इन तीनों कूटों के अन्त में 'ह्रीं' बीज रखा जाता है।[१७]

ह्रीं एवं पंचदशी विद्या

अथर्वशीर्ष[१८] के अनुसार 'पंचदशी' जगन्माता अदिति की मूल विद्या है। इसका निर्माण 15 बीजाक्षरों से होता है। ये बीजाक्षर हैं –

कामः = क, योनि = ए, कमला = ई,
वज्रपाणि = ल, गुहा = ह्रीं, (वाग्भवकूट)
ह, स, मातरिश्वा = क, अभ्र = ह, इन्द्र = ल,
गुहा = ह्रीं, (कामकला कूट)
स, क, ल, ह्रीं (शक्तिकूट)।

पंचदशी विद्या के दो रूप हैं– कादि और हादि । कादि विद्या की उपासना सांसारिक भोगों में अनुरक्त गृहस्थों तथा हादि विद्या की उपासना परमहंस संन्यासियों के लिए विहित है। अथर्वशीर्ष में प्रतिपादित पंचदशी विद्या कादि विद्या है।

---

१५. यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्।
सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति। तैत्तिरीयोपनिषद्–२/१/१

१६. नरसिंहस्वामी (गोपालसुन्दरी) में उद्धृत

१७. हसकलह्रीं (वाग्भव कूट), हसकहल ह्रीं (कामकलाकूट) सकल ह्रीं (शक्ति कूट)
द्रष्टव्य – देव्यथर्वशीर्ष १४, शंकराचार्य (सौन्दर्यलहरी) ३२
तथा सौन्दर्यलहरी पर श्री रामकवि डिण्डिम तथा नरसिंह स्वामी रचित गोपालसुन्दरी टीका।

१८. कामो योनिः कमला वज्रपाणिः गुहा, हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः।
पुन र्गुहा, सकला मायया च पुरूच्येषा विश्वमातादि विद्या। ओम्।१४

आचार्य शंकर ने सौन्दर्यलहरी[१९] में निष्काम योगियों द्वारा संपूज्य हादि विद्या के स्वरूप का निर्वचन किया है। उनके अनुसार–

शिव = ह, शक्ति = स, काम = क, क्षिति = ल, ह्ल्लेखा = ह्रीं, (प्रथम कूट), रवि = ह, शीतकिरण (चन्द्रमा) = स, स्मर (काम) = क, हंस = ह, शक्र (इन्द्र) = ल, ह्ल्लेखा = ह्रीं (द्वितीय कूट) तथा परा (शक्ति) = स , मार (काम) = क, हरि (इन्द्र) = ल, ह्ल्लेखा = ह्रीं (तृतीय कूट) ही हादि विद्या है।

शंकर ने कामना–कल्पवल्ली कादि विद्या का उद्घाटन करते हुए कहा है कि हादि विद्या के प्रथम तीन वर्णों के स्थान पर क्रमशः स्मर = क, योनि = ए तथा लक्ष्मी (शक्ति) = ई वर्णों को रखने से कादि विद्या का निमार्ण होता है। इस कादि विद्या की साधना निःसीम भोगों के रसिक (गृहस्थ जन) करते हैं।[२०] अर्थवशीर्ष का भी यही क्रम है।

नरसिंह स्वामिवर्य ने गोपालसुन्दरी टीका में कादि विद्या के शंकर प्रतिपादित स्मर, योनि और लक्ष्मी को क्रमशः क्लीं, ह्रीं तथा श्रीं मानकर इन्हें अष्टादशाक्षर 'सुन्दरीगोपाल मंत्र' के साथ संयुक्त करने की बात की है।[२१]

किन्तु, ज्ञात नहीं किस आधार पर नरसिंह स्वामी ने हादि लोपामुद्रा विद्या के 'हंस' का अर्थ 'लकार' किया है।[२२] ऐसा करने से हादि–कादि विद्या के द्वितीय (कामकला) कूट के स्वरूप में अन्तर आ जायेगा। तब इस कूट का स्वरूप – ह स क ह ल ह्रीं के बदले ह स क ल ल ह्रीं हो जायेगा। यह परंपरागत नहीं है।

---

१९. शिवः शक्तिः कामः क्षितिरथ रविः शीतकिरणः,
स्मरो हंसः शक्रस्तदनु च परामारहरयः।
अमी ह्ल्लेखाभि स्तिसृभिरवसानेषु घटिता,
भजन्ते वर्णा स्ते तव जननि नामावयवताम्।। सौन्दर्यलहरी–३१

२०. स्मरं योनिं लक्ष्मीं त्रितयमिदमादौ तव मनो
विधायैको नित्ये निरवधिमहाभोगरसिकाः।
जपन्ति त्वां चिन्तामणिगुणनिबद्धाक्षवलयाः,
शिवाग्नौ जुह्वन्तः सुरभिघृतधाराहुतिशतैः। वही–३२

२१. वही, गोपालसुन्दरी टीका

२२. वही (रवि हकार, शीतकिरणः सकारः, स्मरः ककारः, हंसो लकारः, शक्रो लकारः...)

अथर्वशीर्ष में शंकर–प्रयुक्त 'हंस' के स्थान पर 'अभ्र' शब्द का प्रयोग किया गया है। विद्वानों ने अभ्र का बीजाक्षर 'ह' माना है। शंकर ने 'अभ्र' के स्थान पर जो 'हंस' का प्रयोग किया है, उसका अर्थ भी विद्वानों ने 'ह' ही किया है।

किन्तु, गूढ़ बीज वर्णों में कौन–कौन से देव बीज निहित हैं, कौन वर्ण शिव–शक्ति के किस स्वरूप का वाचक है, यह परा शक्ति से अनुग्रहीत साधक ही जान सकते हैं। किन्तु, हंस या अभ्र का बीजाक्षर 'ह' है, ऐसा मानकर परंपरा से अलग होने का भय तो नहीं ही है।

आचार्य शंकर ने सौन्दर्य लहरी में पहले हादि विद्या का उद्घाटन किया, फिर कादि का। इसके विपरीत त्रिपुरोपनिषद् में– कामो योनिः कमला वज्रपाणि.... के रूप में प्रथम कादि विद्या का उद्घाटन कर, फिर अगले ही मंत्र द्वारा हादि विद्या का उद्घाटन किया है। इस उपनिषद् के अनुसार पूर्वमंत्र–वर्णित कादि विद्या के छठे, सातवें तथा वह्निसारथि अर्थात्, मातरिश्वा (वायु) बीजों को इसके प्रथम तीन बीजों के स्थान पर क्रमशः रख देने से कादि विद्या को हादि के रूप में परिणत किया जा सकता है।[२३]

इस निर्देश के अनुसार कादि का छठा बीज = 'ह', सातवां 'स' तथा वह्निसारथि (मातरिश्वा) बीज 'क' को कादि विद्या के प्रथम तीन स्थानों पर रखने से (क के स्थान पर ह, ए के स्थान पर स तथा ई के स्थान पर क) हादि का स्वरूप – (हसकलह्रीं) – हो जाता है। सारांशतः, कादि और हादि विद्याओं के स्वरूप निम्नांकित हैं–

कादि	⟷	हादि
क ए ई ल ह्रीं	(वाग्भव कूट)	ह स क ल ह्रीं
ह स क ह ल ह्रीं	(कामकला कूट)	ह स क ह ल ह्रीं
स क ल ह्रीं	(शक्ति कूट)	स क ल ह्रीं।

त्रिपुरोपनिषद् के अनुसार भी हादि विद्या की उपासना अमृतत्त्व (मोक्ष) के उपासक (परमहंस ज्ञानी जन) ही करते हैं– तुष्टुवांसो अमृतत्त्वं भजन्ते।

---

२३. षष्ठं सप्तममथ वह्निसारथिमस्या मूलत्रिकमादेशयन्तः।
कथ्यं कविं कल्पकं काममीशं तुष्टुवांसो अमृतत्वं भजन्ते ।।...९

कामना बीज—क्लीं

परम शिव की चिदानन्दलहरी का वाचक तृतीय शक्ति बीज "क्लीं" है। इस बीज में क्, ल्, ई और अनुस्वार ये चार वर्ण हैं। इनमें से क वर्ण काली, काम तथा कृष्ण, ल इन्द्र तथा पृथ्वी, ई शक्ति एवं तुष्टि तथा अनुस्वार शिव, कल्याण आदि के वाचक है। किन्तु, तंत्र साधना में मुख्यतः क्लीं को काली, काम और कृष्ण का बीज माना जाता है।[२४]

क अर्थात् काम 'ब्रह्मसू' कहा जाता है— ब्रह्म की प्रथम कामना या इच्छा का प्रतीक— 'कामः इच्छा कामना इत्यर्थः।' ब्रह्म की प्रथम कामना—'एकोऽहं बहु स्याम्' है। इसके बाद 'स ऐच्छत् जाया मे स्यात्' मेरी पत्नी हो। तब वह स्त्री और पुरुष संपृक्त (संमिलित) अर्धनारीश्वर रूप में हुआ। फिर उसने अपने उस 'अर्धनारीश्वर' रूप को दो भागों में विभक्त किया – एक स्त्री और दूसरा पुरुष।

क्योंकि, उसने उक्त दो भाग अलग—अलग कर लिए, इसलिए वह अपने को अधूरा (अर्धबृगलम्) ही महसूस करता है। और, जब तक इसके ये दोनों भाग (स्त्री—पुरुष) एक नहीं होते, वह अपने को अधूरा ही महसूसता है। वस्तुतः, स्त्री के बिना पुरुष 'आकाश' की तरह शून्य है। यह आकाश स्त्री से ही पूर्णत्व को प्राप्त होता है। स्त्री—पुरुष के इसी (संपृक्त) रूप या भाव से मनुष्य (आदि) की उत्पत्ति हुई।[२५]

ईश्वर की यह कामना शक्ति 'क्लीं' सृष्टि—बीज भी है। यही उसकी (ईश्वर की) प्रकृति भी है —या स्रष्टुः सृष्टिराद्या प्रकृतिरिति। कालिदास इस 'प्रकृति' को पृथ्वी कहते हैं, क्योंकि ईश्वरीय काम (कामना) इस प्रकृति का सहारा लेकर ही साकार होती है – प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि

---

२४. कः कामदेव उद्दिष्टोऽप्यथवा कृष्ण उच्यते,
ल इन्द्रः ईः तुष्टिवाची सुखदुःखप्रदं च मम्।
कामबीजार्थ उक्त स्ते तव स्नेहान्महेश्वरि। योगकर्णिका बीजकोश—९८—९९

२५. स दिवतीयमैच्छत्। स हैतावानास यथा स्त्रीपुमांसौ संपरिष्वक्तौ।
स इममेवात्मानं द्वेधापातयत्। ततः पति श्च पत्नी चामवताम्। ....
तस्मादिदमर्धबृगलमिव स्व इति ह स्माह याज्ञवक्यः। तस्मादयमाकाशः स्त्रिया पूर्यत एव तां समभवत्। ततो मनुष्या अजायन्त। – बृहदारण्यक— १/४/३

पुनः पुनः।[२६] तांत्रिक उपासना में पृथ्वी (प्रकृति) का बीज 'ल' है। सृजन की कामना (क) के पश्चात् उसके लिए आधारभूत, या उस काम बीज को अंकुरित करने वाली शक्ति पृथ्वी (ल) की अनिवार्यता है। इसीलिए 'क्लीं' इस कामबीज में क के अनन्तर ल का प्रयोग किया गया है।

परम शिव के काम (क) बीज का रोपण पृथ्वी 'ल' में कर दिया गया। लेकिन, जब तक काम बीज में अंकुरण की शक्ति न हो, सृजन नहीं हो सकता। सृजन के लिए पृथ्वी (ल) के गहन तम में पड़े हुए कामबीज में स्पन्द की आवश्यकता है, उष्मा की जरूरत है। यह कार्य उस परशिव की अपनी अभिन्न शक्ति (ई) ही कर सकती है – 'संभवाम्यात्ममायया'।[२७] ईश्वर अपनी मायाशक्ति (ई) के बिना अंकुरणादि सृजन क्रिया में समर्थ नहीं हो सकता।[२८] काम बीज का पृथ्वी के साथ संयोजन होने पर भी इसके स्पन्दन या अंकुरणादि के लिए शक्ति की आवश्यकता है, इसी तथ्य को ध्यान में रखकर क् ल् के आगे ई बीज रखा गया है।

किन्तु, अंकुरित (काम) बीज में भी जब तक अनिर्देश्य प्राणन–शक्ति का संचार नहीं होता, जब तक वह सफल नहीं हो सकता। अनुस्वार ही वह ईश्वर या प्राणन शक्ति है, जो क ल और ई में चेतनता का संचार करती है। इस तरह काम (क), आधार (पृथ्वी), ल अंकुरण–शक्ति (ई) और इन तीनों में चैतन्य संचारित करने वाले शिव–बीज (अनुस्वार) को मिलाकर संपद्यमानार्थक, संभवनार्थक या सृष्ट्यर्थक काम बीज 'क्लीं' की निर्मिति होती है।

क्लीं ब्रह्म का संकल्प बीज है, ब्रह्ममय है। अतः संकल्प–ब्रह्म 'क्लीं' की उपासना करने वाला साधक जो भी संकल्प करता है, जहां तक संकल्प की गति है, वहां तक उसकी स्वेच्छागति होती है।[२९]

---

२६. गीता ९/८

२७. 'प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया'। वहीं ४/६

२८. 'शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुम्'।
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि। सौ० –।

२९. यावत् संकल्पस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति, यः संकल्पो ब्रह्मेत्युपासते।
छान्दोग्योपनिषद्, अध्याय–४, –४ मंत्र–३

महालक्ष्मी बीज 'श्रीं'

परा शक्ति का चतुर्थ महान् बीज 'श्रीं' है। श्रीं महालक्ष्मी बीज है। महालक्ष्मी के दो स्वरूप हैं – श्री और लक्ष्मी। शुक्ल यजुर्वेद के अनुसार सहस्रशीर्ष, सहस्रपाद, जिसके एकपाद में सारा ब्रह्माण्ड है और तीन पाद ब्रह्माण्ड से परे अमृतमय हैं, उस नारायण पुरुष की दो पत्नियां हैं–पहली श्री और दूसरी लक्ष्मी।[३०]

यजुर्वेद में उल्लिखित श्री और लक्ष्मी के स्वरूप को स्पष्ट किया है परम मेधावी विद्वान् महीधर ने। उनके अनुसार 'जिसके द्वारा व्यक्ति सभी लोगों का आश्रय बनता है, वह श्री है –

'यया सर्वजनाश्रयणीयो भवति सा श्रीः'

अथवा जिसके द्वारा व्यक्ति संपत्तिशाली बनता है, वह श्री है–

'श्रीयते अनया श्रीः सम्पदित्यर्थः'

और, जिसके द्वारा वह लक्षित किया जाता है, अर्थात् दूसरों का ध्यान आकर्षित करता है, वह लक्ष्मी है। यहां लक्ष्मी सौन्दर्य का पर्याय है–

यया लक्ष्यते दृश्यते जनैः सा लक्ष्मीः, सौन्दर्यमित्यर्थः।[३१]

तैत्तिरीय आरण्यक[३२] में – श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च ते..... इस मंत्र के श्रीः के स्थान पर 'ह्रीश्च ते लक्ष्मीश्च ते' पाठ है। वहां 'ह्री' को लज्जाभिमानी देवता तथा लक्ष्मी को ऐश्वर्याभिमानी देवता माना गया है–ह्रीर्लज्जाभिमानी देवता, लक्ष्मीरैश्वर्याभिमानी देवता।[३३]

तात्पर्य यह कि 'श्री' बीज एक ओर संपत्ति की स्वामिनी श्री देवी का वाचक है, तो दूसरी ओर सौन्दर्य की देवी लक्ष्मी का और तीसरी ओर शालीनता की देवी ह्रीं या लज्जा का।

यह महालक्ष्मी सर्वसंपत्स्वरूपिणी, संपत्ति की अधिष्ठात्री, वृद्धिस्वरूपा, वृद्धिदा, क्रोध–हिंसावर्जिता (ह्रीं स्वरूपा) सत्स्वरूपा,

३०. श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे ... शु०य० ३१/२२

३१. वही, महीधर कृत भाष्य

३२. ३/१३/६

३३. वही, सायणभाष्य

परमार्थप्रदा तथा सर्वदा प्रसन्नस्वरूपा है। यह देवी बैकुंठ में महालक्ष्मी, क्षीरसागर में लक्ष्मी, इन्द्र के यहां स्वर्गलक्ष्मी राजाओं के यहां राजलक्ष्मी, सद्‌गृहस्थों के गृह में गेहलक्ष्मी और गृहदेवता आदि के रूप में स्थित है। चन्द्रमा की कान्ति यही है तथा कमलों में कान्ति और कोमलता के रूप में यही विद्यमान है। यह लक्ष्मी ही कला और सौन्दर्य की देवी है। इसके बिना सारा संसार भस्मवत् निरर्थक है, असार है; सारा संसार जीवित होते हुए भी मृत है।[३४]

श्रीं बीज में शकार, रकार, ईकार तथा बिन्दु (अनुस्वार) ये चार वर्ण हैं। इनमें श महालक्ष्मी का, र संपत्ति का, ई तुष्टि का वाचक तथा बिन्दु दुःखहरार्थक है।[३५] तात्पर्य यह कि इस 'श्रीं' बीज के साधक को महालक्ष्मी इतनी लौकिक–अलौकिंक संपत्ति और शोभा प्रदान करती हैं कि वह पूर्णकाम और तुष्ट हो जाता है।

कमलवासिनी महालक्ष्मी का बीज है 'श्रीं'। इसके पूर्ण मंत्र का उद्‌घाटन देवीभागवत में किया गया है –

लक्ष्मीर्मायाकामवाणीङेता कमलवासिनी,
वैदिको मंत्रराजोऽयं प्रसिद्धः स्वाहयान्वितः।[३६]

अर्थात् लक्ष्मी (श्रीं), माया (ह्रीं), काम (क्लीं), वाणी (ऐं), ङे (ए), ता (कमलवासिनी शब्द में तादर्थ्य में ङे) अर्थात् चतुर्थी विभक्ति लगाकर (कमलवासिन्यै) तथा उसके बाद 'स्वाहा' शब्द रखने से लक्ष्मी के मंत्र (श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं कमलवासिन्यै स्वाहा) – का निर्माण होता है।

देवीभागवत के इस श्लोक में – ङेता – का अर्थ 'तादर्थे चतुर्थी है।' 'ङे' चतुर्थी विभक्ति के एकवचन का प्रत्यय है।[३७] इसमें से ङ् का लोप हो

---

३४. विशेष के लिए देखें – देवीभागवतपुराण – ९/४२

३५. महालक्ष्म्यार्थकःशः स्याद् धनार्थे रेफ उच्यते ।
ईस्तुष्टार्थे परो नादो बिन्दु र्दुःखापहारकः ।
लक्ष्मीदेव्या बीजं चैतत् तेन देवीं प्रपूजयेत् ।। योगकार्णिका–९७.

३६. देखे भागवतपुराण –९/४२

३७. स्वौजसमौट्छष्टाभ्यामभिस्ङेभ्याम्भ्यस्ङसिभ्याम्भ्यस्ङसोसाम्ङ्योस्सुप् ।
अष्टाध्यायी – ४/१/२

जाता है[३८] तब केवल 'ए' शेष रहता है। यह 'ए' शक्ति बीज है। यह 'ए' नमः शब्द का भी पर्याय है[३९]। स्वाहा, स्वधा नमः आदि के योग में (ङे) चतुर्थी विभक्ति होती है।[४०] उक्त लक्ष्मीमंत्र में कमलवासिनी शब्द से ङे का योग करने से 'कमलवासिन्यै' बनता है। इस श्लोक द्वारा मंत्र के अन्त में 'स्वाहा' शब्द के प्रयोग का निर्देश है। इस स्वाहा शब्द का प्रयोग अन्य किसी अर्थ में नहीं अपितु 'नमः' के अर्थ में ही हो, इस तथ्य को सुनिश्चित करने के लिए ङे के साथ[४१] तदर्थ में ता का (ङेता कमलवासिनी) प्रयोग किया गया है।

'स्वाहा' शब्द का अर्थ (स्वा+हा) अपना सर्वस्व त्याग (ओहाक् त्यागे) या सर्वस्व समर्पण भी है। इस दृष्टि से मंत्र का अर्थ 'कमलवासिनी के लिये मैं अपना सब कुछ समर्पित करता हूँ' भी होगा।

ऐं ह्रीं क्लीं और श्रीं शक्ति–प्रणव बीज हैं। मुख्यतः ये बीजमंत्र क्रमशः महासरस्वती, महाकाली, महालक्ष्मी और श्री (समृद्धि और कान्ति की देवी) की साधना में प्रयुक्त किये जाते हैं। किन्तु, भावना–भेद से ये बीजमंत्र विभिन्न देवी–देवताओं की साधना में भी प्रयुक्त किये जाते हैं। उदाहरण के लिए क्लीं बीज का प्रयोग कामदेव, कृष्ण, काली और पराशक्ति आदि की उपासना में किया जाता है।

वाग्बीज 'ऐं'

शक्ति बीज 'ईं' में निहित पराशक्ति का बीज "ऐं" है। इसमें बिन्दु परशिव का वाचक है और 'ऐ' पराशक्ति का। इस बीज का निर्माण शक्ति वाचक बीज ईं में भाव प्रत्यय (घञ्)[४२] लगाने से होता है 'ईकारस्य भावः ऐकारः' अर्थात् ईं में रहने वाली शक्ति का नाम ऐं है।

३८. वही, लशक्वतद्धिते १/३/८ तस्य लोपः १/३/९

३९. प्रणवो बीजमाख्यातं नमः शक्तिरुदीरिता" इत्यादौ नमः पदस्य च शक्तिपदार्थताप्रतिपादनात् एकारेण च चतुर्थ्येकवचने ङे इत्यस्योक्तिः।
सौन्दर्यलहरी के प्रथम श्लोक पर गोपालसुंदरी टीका

४०. नमः स्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड् योगाच्च।।

४१. तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या (वार्तिक – १४५८) अष्टाध्यायी – २/३/१६.

४२. भावे– अष्टाध्यायी – ३/३/१८
गत्यर्थक इण् धातु में 'भावे' सूत्र से भावार्थक घञ् प्रत्यय और वृद्धि करने से 'ऐ' बनता है। यह 'ऐ' सृष्टि रूपिणी भगवती सरस्वती का वाचक है– ऐंकारी सृष्टिरूपिण्यै ...

'शिव' शब्द में शकार, इकार, वकार तथा अकार ये चार वर्ण हैं। इनमें से शकार तथा वकार शिव के वाचक हैं तथा इकार व अकार शक्ति के। इ तथा अ के क्रम बदल देने से ये अ तथा इ हो जाते हैं। इन दोनों वर्णों की संधि से 'ए'[४३] बीज का निर्माण होता है। यह 'ए' भगवान् शंकराचार्य द्वारा सौन्दर्यलहरी में उद्घाटित कामकला बीज है।[४४] यह कामकला बीज ही पूर्ववत् भाव में 'ऐ' हो जाता है। इसमें पर शिव वाचक बिन्दु लगा देने से 'ऐं' बीज की अभिव्यक्ति होती है।

यह संपूर्ण जगत् इसी ऐं शक्ति द्वारा अभिधेय है, वाच्य है। क्योंकि यह जो कुछ भी है, वह समस्त 'ऐं' ही है। इस तथ्य को ही यम ने नचिकेता से–एतद् वै तत्[४५]– कह कर उद्घाटित किया था। एतत् वै तत् का सामान्य अर्थ है– यह सब कुछ जगत् वह (शक्ति) ही है। किन्तु 'एतत् वै तत्' में परा शक्ति 'वाक्' का स्वबीज 'ऐं' छिपा हुआ है। इसका उद्घाटन निम्न प्रकार से किया जा सकता है–

एत् (ए)	अत् (अ)
वै (निश्चय)	तत् (वह) है।

यहां एत् तथा अत् में तकार 'तपरस्तत्कालस्य'[४६] के अनुसार केवल ए और अ को रेखांकित करते हैं। इस प्रकार एतत् वै तत् का अर्थ हुआ –यह सब कुछ ए और अ है। अब, इनका क्रम उलट कर संधि कर देने से 'ऐ' बीज का उद्घाटन होता है। इसमें पर शिव वाचक बिन्दु लगाने से 'ऐं' बीज निर्मित होता है।

एत् और अत् का क्रम न बदलने पर भी इस बीज की सिद्धि होती है। ए का भाववाचक 'ऐ' बना लेने के पश्चात् परशिव वाचक अकार को बिन्दु रूप मानकर इस बीज का निर्माण किया जा सकता है।

---

४३. अदेङ्गुण – वही ६/१/८७
आद्गुणः – वही १/१/२
४४. सौन्दर्यलहरी – १९ वां श्लोक
४५. कठोपनिषद् – २/१/७
४६ अष्टाध्यायी – १/१/७०

कुंजिका स्तोत्र में 'ऐं' स्वरूपा भगवती को सृष्टिरूपा कहा गया है[४७] क्योंकि नाम और रूप 'इदं नाम अयं रूपः' में पदार्थों की अभिव्यक्ति ही 'सृष्टि' है और ऐसी अभिव्यक्ति भगवती 'वाक्' द्वारा ही संभव है।[४८]

ऋग्वेद के वागाम्भृणी सूक्त में[४९] 'य ईं श्रृणोति' से ईं बीज से बोध्य ऐं बीज की ओर ही इंगित किया गया है वहां भगवती 'वाक्' अपने स्वरूप का स्वयं निर्वचन करती हुई कहती हैं—

'परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिना संबभूव'

अर्थात् 'मैं आकाश और पृथ्वी से परे हूँ। यह सारी सृष्टि मेरी महिमा का प्रस्पन्द है।'

वास्तव में, ऋग्वेद का वागाम्भृणी सूक्त भगवती पराशक्ति 'वाक्' की महिमा का प्रतिपादक अद्भुत सूक्त है।[५०]

भगवती वाग्देवी के बीज नाम 'ऐं' की महिमा का प्रतिपादक एक कथानक देवीभागवत में भी आया है, जिसके अनुसार एक व्याध के बाण से आहत वन वराह की रक्षा तपस्यारत ब्राह्मण सत्यव्रत के मुख से अकस्मात् निकले 'ऐ, ऐ' इस अशुद्ध सारस्वत बीज से हुई थी।[५१] देवीभागवत के अनुसार ही भयभीत व्यक्ति द्वारा 'ऐ' 'ऐ' जैसे बिन्दुविहीन सारस्वत मंत्र के उच्चारण से भी रक्षा होती देखी जाती है।[५२] इस प्रकार भगवती वाग्देवी के बीज 'ऐं' के अस्पष्ट, अशुद्ध और अज्ञातार्थ उच्चारण से भी भयाक्रांत की रक्षा यदि संभव होती है, तो इसके शुद्ध और भावनापूर्ण जप से किस भय की निवृत्ति नहीं हो सकती?

आचार्य शंकर ने भी सारस्वत बीज के इस प्रभाव का वर्णन अपने

---

४७ ऐंकारी सृष्टिरूपायै ...

४८ सर्वं शब्देन भासते —१ वाक्यपदीयम् — १/१२३

४९ १०/१२५/८

५० ऋग्वेद — १०/१२५/८

५१. द्रष्टव्य — देवीभागवत — ३/११

५२. ऐ ऐ इति भयार्तेन दृष्ट्वा व्याघ्रादिकं वने,
बिन्दुविहीनमपीत्युक्तं वांच्छितं प्रददाति वै। — वही ३/९/४३

'लघुस्तव' नामक स्तोत्र में किया है।[५३]

वस्तुतः ह्रीं क्लीं श्रीं आदि देवी बीजों की आधारभूत मातृका 'ईं' का भावात्मक शक्ति बीज ऐं 'एतद् वै तत्' इस कठ श्रुति के प्रामाण्य से निखिल ब्रह्माण्ड की कारण भगवती पराशक्ति का बोधक बीज है। इसकी उपासना से ब्रह्माण्ड की सभी देवी और भौतिक शक्तियों की उपासना संपन्न मानी जाती है। इसीलिए देवीमाहात्म्य के बीजभूत 'तंत्र दुर्गासप्तशती' के सभी बीज मंत्रों में 'ऐं' बीज का संयोजन है।

भगवती पराशक्ति का यह 'ऐं' बीज सारस्वत बीज होने के कारण समस्त लौकिक एवं परालौकिक विद्याओं के उपार्जन में अद्भुत सामर्थ्य रखता है।

बधूबीज 'स्त्रीं'

स्त्रीं बधूबीज है। इसमें सकार दुर्गोत्तारणवाच्य, अर्थात् दुर्गम स्थितियों से रक्षा करने वाली शक्ति दुर्गा का वाच्य है। भवसागर से तारने वाला रकार समस्त मंत्र के अर्थ का, ईकार महामाया तथा बिन्दु दुःख–हर्ता का वाचक है। अर्थात् (स्त्रीं) स्त्री (बधू) के रूप में ही वह महेश्वरी जीव को इस संसार सागर से पार करती है। अपने आप को विश्व के रूप में परिणत करने के लिए 'शिव की पत्नी' का रूप धारण करने वाली भगवती उमा हैमवती ही इस बधूबीज 'स्त्रीं' की परम वाच्य हैं। इसी बधूबीज 'स्त्रीं' का सहारा लेकर पुंस्तत्त्व आत्मविस्तार करता है और अपने आपको अक्षर–अमृत और शाश्वत बनाता है। इसी बीज का आश्रय लेकर वह संतान–तन्तु का विस्तार करता है, अपने आप को प्रणव अर्थात् नित्य नूतन बनाता है–'आत्मा वै जायते पुत्रः' से इसी तथ्य को कहा गया है।

---

५३. दृष्ट्वा संभ्रमकारिवस्तु सहसा ऐ ऐ इति व्याहृतं,
येनाकूतवशादपीह वरदे बिन्दुं विनाप्यक्षरम् ।
तस्यापि ध्रुवमेव देवि तरसा जाते तवानुग्रहे,
वाचः सूक्तिसुधारसद्रवमुचो निर्यान्ति वक्त्राम्बुजात् ।।

यह वही बीज है, जिसकी कामना परम शिव ने सबसे पहले की थी – स द्वितीयमैच्छत्, जाया मे स्यात् ।' यह वही तत्त्व है, जो नौ या दस मास[1] तक अपने पति (शिव) को अपने गर्भ में पालकर 'जाया' इस महामहिमाशाली पद को सुशोभित करती है – सो कामयत जाया मे स्यादथ प्रजायेय (बृहदारण्यक–१/४/१७)। पत्नी को 'जाया' कहा ही इसलिए जाता है कि वह पति को पुनः नया जन्म (संतान के रूप में) देती है।

'जाया', क्योंकि गर्भ के रूप में पति का पालन–संवर्धन करती है, इसलिए – पति का भी कर्तव्य बनता कि वह उसका पालन, पोषण, संवर्धन, सत्कार और सम्मान करे –सा भावयित्री भावयितव्या भवति[2] श्रुति का यही तात्पर्य है।

स्त्रीं बीज की उपासना करने वाले साधक का गृहस्थ जीवन सुख, शान्ति और समृद्धिपूर्ण होता है और जीवनपर्यन्त पति–पत्नी अभेदभाव से सामंजस्यपूर्ण समरसता का आस्वाद करते हैं।

इनके अतिरिक्त अक्षमालोपनिषद् में अ से लेकर क्ष पर्यन्त वर्णमाला में आये सभी वर्णों के अर्थ एवं गुण–संक्षेप में दिये गये हैं, जिनसे अनगिनत बीजमंत्रों की रचना होती है। इन मातृकाओं से निर्मित बीजमंत्रों की उपासना से मातृकाओं मे निहित निम्नांकित गुणों के अनुरूप सिद्धियां प्राप्त होती हैं–

अं	=	सर्वव्यापक, मृत्युंजयता,
आं	=	आकर्षण एवं सर्वव्यापकता
इं	=	पुष्टिकर एवं क्षोभकर,
ईं	=	वाक्प्रसाद एवं निर्मलता
उं	=	सर्वबलप्रद एवं सार,

१. योषा वाव गौतमाग्निः .... इति तु पंचम्यामाहुता वापः पुरुषवचसो भवन्तीनि उल्बावृतो गर्भो दश वा नव वा मासानन्तः शयित्वा यावद्वाथ जायते । छान्दोग्य–५/९/१

२. सा भावयित्री भावयितव्या भवति तं स्त्री गर्भं बिमर्ति... ऐतरेयोपनिषद्–२/३
पतिर्जायां प्रविशति गर्भो भूत्वा स मातरम् ।
तस्यां पुन र्नवो भूत्वा दशमे मासि जायते ।। मनुस्मृतिः९/८

ऊं	=	उच्चाटनकर एवं दुःसह
ऋं	=	संक्षोभकर एवं चंचलता,
ॠं	=	संमोहन एवं उज्ज्वलता
लृं	=	विद्वेषण एवं मोहकता,
ॡं	=	मोहन
एं	=	सर्ववशंकर,
ऐं	=	शुद्ध, सात्विक एवं पुरुषवशंकर
ओं	=	नित्य, शुद्ध एवं अखिल वाङ्मयता,
औं	=	सर्व वाङ्मयता एवं वशंकर
अं	=	गजादि वशंकर एवं मोहन,
अः	=	मृत्युनाशकर एवं रौद्र स्वरूप।
कं	=	सर्व विषहर एवं कल्याणप्रद,
खं	=	व्यापक एवं सर्वक्षोभकर
गं	=	सर्व विघ्नशमन एवं महत्तर,
घं	=	सौभाग्यप्रद, स्तंभनकर
ङं	=	उग्र एवं सर्वविषनाशक,
चं	=	अभिचारघ्न एवं क्रूर
छं	=	भीषण– भूतनाशकर
जं	=	दुर्धर्ष एवं कृत्यादिनाशकर
झं	=	भूतनाशकर
ञं	=	मृत्युप्रशमन
टं	=	सुभग, सर्वव्याधिहर
ठं	=	चन्द्रस्वरूप/चन्द्रबीज
डं	=	विषघ्न, शोभन, गरुणात्मक,
ढं	=	सर्वसंपत्कर, सुभग

णं = सर्वसिद्धिप्रद, मोहन

तं = धनधान्यप्रद, संपत् दायक

थं = धर्मप्राप्तिकर, निर्मल

दं = पुष्टि—वृद्धिप्रद, निर्मल

धं = विष—ज्वरघ्न, विपुल,

नं = भुक्ति—मुक्तिप्रद

पं = विष—विघ्ननाशक, भव्य

फं = अणिमादिसिद्धिप्रद, ज्योतिस्वरूप

बं = सर्वदोषहर, शोभन,

भं = भूतप्रशान्तिकर, भयंकर

मं = विद्वेषी एवं मोहन

यं = सर्वव्यापक, पावन

रं = दाहकर, विकृत

लं = विश्वंभर, भासुर

वं = सर्वव्यापन एवं संतुष्टिकर,

शं = सर्वफलप्रद, निर्मल

षं = धर्मार्थकामप्रद, धवल,

सं = सर्वकारण, सर्व वर्णिक

हं = सर्ववाङ्मयस्वरूप—निर्मल,

ळं = सर्वशक्तिप्रद, प्रधान

क्षं = परात्परतत्त्वज्ञापक, परज्योतिस्वरूप ।'*

* द्रष्टव्य – अक्षमालोपनिषद्

सर्वमस्मिं समाहितम्

छान्दोग्य में एक सुन्दर आख्यान है। 'एक बार मृत्यु से भयभीत देवताओं ने उससे बचने के लिए ऋग्, यजुष् तथा सामवेद (प्रतिपादित विद्या अर्थात् साधन–बहुल कर्मकांड) में प्रवेश किया। उन्होंने वैदिक मंत्रों द्वारा अपने को कवचित कर (ढक) लिया। उन्हें ऐसा लगा कि अब मृत्यु उन्हें नहीं देख पायेगी। लेकिन, यह उनका भ्रम था। वे (वैदिक मंत्रों के आधार पर यज्ञादि का अनुष्ठान करके भी) मृत्यु से बच नहीं सके। जिस तरह मछुआरा जल में छिपी हुई मछलियों को भी देख लेता है, उसी प्रकार साम, यजुष् और ऋग्वेद (के अनुष्ठानों) में अपने आप को छिपा और सुरक्षित मान रहे देवों को भी मृत्यु ने देख लिया।

देवताओं को जैसे ही यह अवगत हुआ कि मृत्यु ने उन्हें देख लिया है, (उन वैदिक अनुष्ठानों को छोड़) स्वर अर्थात् ओम् (बीज)की उपासना में लग गये। इससे वे मृत्यु से बचकर अमृत और निर्भय हो गये।'[१]

इस आख्यायिका का आध्यात्मिक अर्थ है। वह यह कि बाह्य साधन निरपेक्ष–नामोपासना ही सर्वोत्तम है। यह नामोपासना उपास्यदेव के बीजनामों का जप और उनमें उपास्य की भावना ही है।

यहाँ उल्लेखनीय केवल यह है कि साधन–बहुल वैदिक अनुष्ठानों को छोड़कर वेदत्रयी के सार बीजरूप, साधन–निरपेक्ष ओम् की साधना से ही देव अपने लक्ष्य को पाने में समर्थ रहे। वेदत्रयी–प्रतिपादित साधना न्यूनता से ग्रस्त थी, इसलिए मृत्यु उन्हें देखने में समर्थ रही। वस्तुतः, न्यूनता या अपूर्णता ही मृत्यु है और पूर्णता या भूमात्व ही अमरत्व है। अल्पता ही दुःख है, मृत्यु है और भूमात्व या पूर्णता ही सुख है, अमरत्व है।[२]

---

१. छान्दोग्य – १/४/१–५

२. यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति। छान्दोग्य – ७/२३/१

परमात्मा के बीज नाम ओम् द्वारा उसकी उपासना बाह्य साधन निरपेक्ष होने के कारण सर्वश्रेष्ठ उपासना है।[३] इसी प्रकार विभिन्न दैवी शक्तियों की उनके वाचक बीज नामों से की गई उपासना मूर्त प्रतीक–सापेक्ष उपासना से श्रेष्ठ है।

किसी शास्त्रीय और उत्तम आलम्बन को ब्रह्म या अपने साध्य इष्ट का स्वरूप मानकर अपने मन को अविच्छिन्न (रूप) से उसमें लगा देना ही प्रतीकोपासना है। प्रतीकोपासना के लिए किसी मूर्त रूप जैसे मूर्ति आदि या अमूर्त (नाम) का आलंबन लिया जाता है। प्रायः सगुण परमेश्वर की उपासना के लिए साकार मूर्ति आदि तथा निगुर्ण परमेश्वर की उपासना के लिए नाम का आलंबन लिया जाता है। ये नाम और रूप दोनों ही ईश्वर के प्रतीक हैं।

परमात्मा के पुर इस शरीर में दहराकाश स्थित ब्रह्म के अतिरिक्त उसकी सेवा में जुटे असंख्य देवी–देवता तथा पंचभौतिक संसार आदि सब कुछ है। कर्मेंद्रियां, ज्ञानेन्द्रियां, प्राण, मनस् बुद्धि, चित्त, अहंकार इन सब का संचालन जिनके द्वारा हो रहा है, वे सब देवी–देवता अपनी समस्त साजसज्जा के साथ इस शरीर में विद्यमान हैं। अनेक नाम–रूप वाले देवी–देवता इस मानव शरीर में अपने सूक्ष्म रूप में ही अपनी समस्त महिमाओं के साथ स्थित हैं। उन सबके नाम और रूप पृथक्–पृथक् हैं। वे अपने नाम और रूप से संबोधित और ध्यायित होकर साधक को यथेष्ट फल प्रदान करते हैं।

विराट् और व्यापक रूप से ब्रह्माण्ड और सूक्ष्म रूप से इस शरीर में स्थित देव–शक्तियों की उपासना के अनेक प्रकार प्रचलित हैं। किन्तु, उनके विराट् रूप की उपासना सामान्य साधकों के लिए प्रारंभ में दुष्कर है। विश्वोत्तीर्ण विराट् ब्रह्म की साधना सुगम नहीं है। इसीलिये महर्षियों ने प्रतीक साधना द्वारा विराट् तक पहुंचने की विधि आविष्कृत

३. ओमित्येतदक्षरं परमात्मनोऽभिधानम् – तथा चार्चादिवत् परस्यात्मनः प्रतीकं सम्पद्यते। एवं नामत्वेन प्रतीकत्वेन च परमात्मोपासनसाधनं श्रेष्ठम्।

शांकरभाष्य–(छान्दोग्य–१/१/१)

की। 'आदित्य ब्रह्म है', 'आकाश ब्रह्म है' आदि श्रुति वाक्यों द्वारा इसी तथ्य को सामने लाया गया है।

एक छोटी सी मूर्ति में विराट् विष्णु की परिकल्पना और उसके बाद अपने हृदय के भीतर उस विराट् की भावना करके उसका साक्षात्कार करना सबसे सरल है। इसी प्रकार परात्मा के अनन्त नाम या वाचक पदों में से सबसे प्रिय और सबसे सरल नाम का चयन कर उसे संबोधित करना और उसके गुणों का चिन्तन करना नामोपासना है।

परात्मा के अनन्त नामों में से प्रणव या उद्गीथ 'ओम्' नाम उसके सबसे नजदीक और साधक के लिए सबसे सरल है। 'ओम्' उसके इस नाम में समस्त विश्व के नाम छिपे हुए हैं। ओम् नाम विश्व के प्रत्येक नाम में उसी तरह व्याप्त है, जैसे विश्व के समस्त रूपों में वह (परात्मा) व्याप्त है।

'ओम्' यह नाम विश्व के समस्त नामों का 'बीज' है। आचार्यों ने ओम् बीज नाम को 'तार या तारक–बीज' कहा है। वह इसलिए कि इस ओम् बीज द्वारा समस्त नाम बीजों का अतिक्रमण करके निर्बीजावस्था का साक्षात्कार किया जा सकता है।

जिस प्रकार हृदयाकाश में स्थित परमात्मा–ब्रह्म के वाचक बीज नाम ओम्, है उसी प्रकार इस शरीर के करोड़ों अवयवों के अधिष्ठात्री दैवी शक्तियों के भी अपने–अपने बीज नाम हैं। जिस प्रकार वह परात्मा अपने प्रिय ओम् नाम से संबोधित होकर साधक की समस्त कामनाओं की पूर्ति करके उन्हें पूर्णकाम या आप्तकाम कर देता है, उसी प्रकार शरीरान्तर्गत विभिन्न दैवी शक्तियां अपने–अपने प्रिय बीजनामों से संबोधित और साधित होकर अपनी शक्ति के अनुसार साधकों की कामनाओं की पूर्ति करती हैं।

इसके साथ ही यह भी तथ्य है कि जिस प्रकार उस परतत्त्व का साक्षात्कार अपने अन्दर उसकी भावना करने से अपने अन्दर ही होता है, उसी प्रकार विभिन्न देवी–शक्तियों का साक्षात्कार भी साधक को अपने अन्दर ही होता है। तात्पर्य यह कि ब्रह्म–साधना तथा अन्य देवी–देवताओं की साधना के लिए बाह्य साधनों की अनिवार्यता नहीं है। वास्तव में, विराट् की साधना बाह्य साधना है। इसके लिए बाह्य

साधन (यज्ञ–याग के लिए अपेक्षित साधनों) की जरूरत होती है। लेकिन, सूक्ष्म आन्तर–साधना के लिए बाह्य–साधनों की जरूरत नहीं होती।

वैदिक काल से प्रचलित यज्ञ आदि विराट् की साधनाएं हैं। इसके विपरीत उपनिषत्प्रतिपादित आत्मोपासना साधन–निरपेक्ष आन्तरिक साधना है। बीजनामों या बीजाक्षरों की साधना में बाह्य–साधनों की आवश्यकता, (कम से कम अनिवार्यता) नहीं है। उदाहरण के लिए यदि देवी माहात्म्य दुर्गासप्तशती के सात सौ मंत्रों का पाठ और तदनुसार अपेक्षित संख्या में हवन आदि द्वारा देवी की साधना की जाती है, तो उसमें समस्त बाह्य विधियों का पालन जरूरी है। किन्तु, यदि भगवती दुर्गा की उपासना उनके बीजनामों से की जाती है, तब बाह्य–साधनों की अनिवार्यता नहीं रहती।

बाह्य–साधन–सापेक्ष उपासना कठिन है। ऐसी साधना के लिए अपेक्षित वस्तु, देश तथा काल आदि की उपलब्धि सहज नहीं होती। ऐसी साधनाओं में विघ्नों का आना स्वाभाविक है। किन्तु, आन्तरिक साधना, साधक यदि अपने को संयत रखे तो, बड़ी सरलता से संपन्न होती है।

योगियों के अनुसार मानव शरीर के विभिन्न अंग–प्रत्यंगों नाड़ी और शिराओं, नाडिगुल्मों और मस्तिष्क आदि में ब्रह्माण्ड सहित समस्त देवी–देवता स्थित हैं। उनकी मान्यता है कि जो कुछ भी ब्रह्माण्ड में है, वह हमारे पिण्ड (शरीर) में भी अपने–अपने अभिधान (नाम) के साथ विद्यमान है। अतः पिण्ड के ज्ञान से ब्रह्माण्ड का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

किन्तु, ब्रह्माण्ड के साथ पिंड की एकात्मकता के लिए, पिण्ड में निहित ब्रह्माण्ड की शक्तियों के ज्ञान या जागरण के लिए, पिंड की रोग–निवृत्ति तथा अन्य अनेक प्रयोजनों से शरीर–साधना करके उकृष्ट फलप्राप्ति के लिए बीजाक्षरों या बीजमंत्रों का जप उनके अर्थ के ज्ञान के साथ ही अर्थ के अनुरूप भावना के साथ किया जाना चाहिए।

वस्तुतः, समस्त योग या तांत्रिक–साधना भावना सापेक्ष ही है। वैसे, भावना का महत्त्व लौकिक जीवन में भी देखा जा सकता है। एक युवती का

स्पर्श उसका पिता, भ्राता, पुत्र और पति या प्रेमी आदि कई व्यक्ति करते हैं। किन्तु उस स्पर्श की भावना के भेद से उनकी स्पर्शानुभूति पृथक्–पृथक् होती है। उस युवती के स्पर्श से उसके प्रेमी के मन और शरीर में जो संवेग उत्पन्न होते हैं, वे एक भाई, पिता या पुत्र को नहीं हो सकते। ठीक इसी प्रकार मंत्रों के अर्थ के अनुरूप भावना के साथ जो जप किया जाता है, उसका प्रभाव निश्चित ही होता है। अनजाना स्पर्श और अभावित मंत्र प्रायः प्रभावहीन होते हैं। लेकिन, प्रायः, हमेशा नहीं।

भावना मनस् का विषय है अर्थात् भावना मन से की जाती है। योग या तांत्रिक साधना में शरीर के विभिन्न अवयवों या केन्द्रों में ब्रह्माण्ड के विभिन्न रूपों की भावना की जाती है। क्योंकि 'यथा ब्रह्माण्डे तथा पिंडे'[४] की मान्यता के अनुसार हमारे पिंड में ब्रह्माण्ड के विभिन्न तत्त्व, पदार्थ या रूप सूक्ष्मरूप से वर्तमान हैं।[५] जिस तरह एक सूक्ष्म वट बीज को अंकुरित और पल्लवित करके उसे पूरे वटवृक्ष का रूपाकार दिया जा सकता है, उसी प्रकार शरीर के अन्दर बीज रूप से वर्तमान ब्रह्माण्ड के विभिन्न रूपाकारों को उनके बीजमंत्रों की साधना से साक्षात् किया जा सकता है, अपने लिए और दूसरों के लिए भी। योगी अपने अन्दर भी विश्व का साक्षात्कार कर सकता है और भगवान् कृष्ण ने जैसे अपने में अर्जुन को समस्त ब्रह्माण्ड का साक्षात्कार कराया था, उसी भांति अन्यों को भी करा सकता है।

शरीर या पिंड की ब्रह्माण्ड साधना के लिए भावना की अनिवार्यता कही जा चुकी है। शरीर के किस अंग में किस लोक, वस्तु या तत्त्व की भावना करनी चाहिए और उसका क्या फल है, इस तथ्य का महर्षि पतञ्जलि ने अपने योग दर्शन में विस्तार से उल्लेख किया हैं। उनके अनुसार नाभिचक्र (मणिपूर) में संयमन करने से समस्त कायव्यूह अर्थात् शरीर की बनावट का ज्ञान हो जाता है – तथा हृदय में मन के संयम से समस्त मनोजगत् का ज्ञान प्राप्त होता है– हृदये चित्तसंवित्।

४. अण्डे लोकालोकगिरिः पिण्डे त्वचः। अण्डे जलधिः पिण्डे रक्तम्। सौन्दर्यलहरी (१०) पर डिंडिमभास्य

५. अंडे ये प्रपंचाः स्युः पिण्डे ते च प्रतिष्ठिताः।
लघुत्वं गुरुत्वञ्चर्ते न भेदस्त्वण्डपिण्डयोः ॥ — योगदीपिका

जिस समय योगी को प्रातिभ ज्ञान उत्पन्न होता है, तब वह सर्वज्ञ हो जाता है– प्रतिभाद्वा सर्वम् । प्रातिभ ज्ञान से योगी के सांसारिक बंधन क्षीण हो जाते हैं और वह चित्त के प्रचार–संस्थानों को जानकर परकाया में प्रवेश भी कर सकता है –

बंधकारणशैथिल्यात् प्रचारसंवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः ।[६] यहां परशरीरावेश या परकाय प्रवेश से तात्पर्य यह भी है कि योगी समस्त नाडियों के संधिस्थल नाभिचक्र का सम्यग् ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद अपने इस लघु आकार शरीर के साथ ही अपने विराट् रूप को भी यथार्थतः जानकर उससे तादात्म्य प्राप्त कर लेता है ।

शांडिल्योपनिषद् में भी इस विषय पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है । इस के अनुसार तार (भ्रूमध्य) में मन के संयम से अर्थात् मन को लगाने से समस्त विषयों का ज्ञान हो जाता है । नासिका के अग्रभाग में चित्त के संयम से इन्द्र लोक, नासा के निचले भाग में संयम से निम्नलोक, नेत्रों में संयम से सभी लोकों, कर्ण में संयम से यम लोक, कर्ण के पक्ष (कनपटी) में संयम से निर्ऋति लोक, पीठ में संयम से वरुण लोक, बाएं कान में संयम से वायुलोक, कंठ में संयम से चन्द्रलोक, बाई आंख में संयम से शिवलोक, सिर में संयम से ब्रह्मलोक, पैर के निचले भाग में संयम से अतल लोक, पैर में संयम से वितललोक, पाद की संधि में संयमन से नितल लोक, जंघा में संयम से सुतल लोक, जानु (घुटना) में संयम से महातल लोक, उरु में संयम से रसातल लोक, कटि में संयम से तलातल लोक, नाभि में संयम से भूलोक, कुक्षि में संयम से भुवः लोक, भ्रूमध्य में संयम से तपः लोक, मूर्धा में संयम से सत्य लोक, धर्माधर्म में संयम से अतीत अनागत, विभिन्न प्राणियों की ध्वनियों में चित्त लगाने से सभी प्राणियों की ध्वनि, अपने संचित कर्मों में चित्त लगाने से पूर्वजाति (पूर्वजन्म) स्मरण, दूसरे के चित्त में अपना चित्त लगाने से दूसरे के चित्त (विचार) का, अपनी काया में चित्त लगाने से अन्य के लिए अदृश्यता, बल में संयम से हनुमानादि की भांति बल, सूर्य में संयमन से भुवनों का ज्ञान, चन्द्र में संयम से ताराव्यूह का ज्ञान, ध्रुव में

६. पातंजलयोगदर्शनम् –३/३९

संयमन से उसकी गति, नाभिचक्र में कायव्यूह का ज्ञान, कंठकूप में संयम से भूख–प्यास की निवृत्ति, कूर्म नाडी में संयम से स्थिरता, भ्रूमध्य में संयम से सिद्धों के दर्शन, शरीराकाश (हृदयाकाश) में संयम से आकाश में गमन तथा शरीर के अन्य स्थानों पर मन के संयम से विभिन्न लोकों की सिद्धि, होती है।[७]

इस प्रकार मानव शरीर के विभिन्न अंगों में समस्त ब्रह्माण्ड तथा उनके अधिष्ठाता देवी–देवता स्थित हैं। इनके साथ ही उनके नामों के बीजाक्षर भी वहीं हैं। इन देवताओं के बीज नामों के भावना सहित जप से ब्रह्माण्ड के उस लोक तथा उस देवता का साक्षात्कार या ज्ञान होता है, जिससे वह बीजनाम संबन्धित होता है।

एक प्रश्न बार–बार किया जाता है कि शास्त्रों या पुस्तकों में पढ़कर मंत्र–साधना करनी चाहिए अथवा नहीं? बहुत सी प्रामाणिक पुस्तकों और व्यक्तियों ने कहा है कि केवल पुस्तकें पढ़कर उनके आधार पर मंत्रसाधना करने से लाभ की अपेक्षा हानि की संभावना अधिक है। इसमें सच्चाई हो सकती है, बहुत से मामलों में है भी। लेकिन, सिद्ध और सामान्य मंत्रों की साधना शास्त्र में बताई गई विधि से संपन्न की जा सकती है। ऐसी साधना यदि भावना के साथ की जाय तो उसके सफल होने में शक की गुंजाइश नहीं है।

आखिर, पुस्तकों में लिखी हुई मंत्रराशि के उपयोग के लिए प्रमाणिक गुरु ढूंढने कोई कहां–कहां भटके? गुरु गलियों–गलियों में तो मिलते नहीं। तो, फिर किया क्या जाय? उपाय यही है कि यदि मंत्रोपासना किसी शुभ कार्य हेतु करनी है, तो गुरु की प्रतीक्षा किये बिना आरंभ कर देनी चाहिए, गुरु के मिलने की प्रतीक्षा में बैठे नहीं रहना चाहिए।

हमारे ग्रंथों में लिखित बहुत सी साधनाएं, मंत्रराशि और ज्ञान–विज्ञान सदियों से निष्प्रयोज्य, अप्रयुक्त पड़े हैं, उन पर विस्मरण और भ्रांति की धूल जमा हो रही है। यह इसलिए कि उन्हें सिखाने–बताने वाले

७. शांडिल्योपनिषद्, प्रथमाध्याये।

गुरुओं की खोज अब भी जारी है। हममें वह साहस और आकांक्षा है ही नहीं कि शास्त्र–विधि के अनुसार उन मंत्रों की साधना और प्रयोग स्वयं करके देखें। मंत्र तो विशुद्ध आध्यात्मिक विज्ञान हैं। इनके व्यावहारिक प्रयोग की कोशिश होनी चाहिए। केवल इस डर से कि इनकी बिना गुरु साधना करने से हानि होगी, इनकी प्रमाणिकता को प्रश्नों के घेरे में बन्द कर बैठे नहीं रहना चाहिए।

भौतिक विज्ञान की जानकारी के लिए क्या पुस्तकों की उपयोगिता नहीं है? किसी औषधि का निर्माण क्या पुस्तकें पढ़कर नहीं किया जा सकता ? क्या हम इन सब के लिए पुस्तकों में निहित ज्ञान और प्रक्रिया के प्रति अविश्वास करके योग्य गुरु की खोज में ही लगे रहते हैं? क्या पुस्तकों से ज्ञान का सैद्धान्तिक और व्यावहारिक प्रचार–प्रसार नहीं होता? यदि ऐसा नहीं है, तो मंत्र–विज्ञान की जानकारी और उसके प्रयोगात्मक उपयोग के लिए हम गुरुओं की प्रतीक्षा क्यों करें?

यह ठीक है कि योग्य गुरुओं से किसी प्रकार का भी ज्ञान–विज्ञान सरलता से ग्रहण किया जा सकता है। किन्तु, जितना और जहां तक संभव है, हमें प्रमाणिक ऋषियों–मुनियों, साधकों तथा उपासकों द्वारा लिखित और परंपराप्राप्त मंत्रों की साधना शास्त्रों में बताई विधियों के अनुसार अथवा स्वयं आविष्कृत विधि से आरंभ करने में अनिष्ट की आशंका नहीं करनी चाहिए।

साधना में शास्त्रों की उपयोगिता का प्रतिपादन करते हुए योगकुण्डल्युपनिषद् में भी कहा गया है कि –

शास्त्रं विनापि संबोद्धुं गुरवोऽपि न शक्नुयुः,
तस्माद् दुर्लभतरं लभ्यं शास्त्रमिदं मुने।
यावन्न लभ्यते शास्त्रं तावद् भुवि पर्यटेत् यतिः,
यदा संलभ्यते शास्त्रं तदा सिद्धिः करे स्थिता।
न शास्त्रेण विना सिद्धि दृष्टा चैव जगत् त्रये,
तस्मान्मेलनदातारं शास्त्रदातारमेव च।
तदभ्यासप्रदातारं शिवं मत्वा समाश्रयेत्।

卐

महाशक्ति दुर्गा की उपासना–विधि

महाशक्ति दुर्गा की उपासना के लिए प्रथम आवश्यकता उचित स्थान के चुनाव की है। शास्त्रों में कोई भी पवित्र क्षेत्र, नदी का तट, गुफा–पर्वत–शिखर, तीर्थ स्थान, नदी–संगम, पवित्र जलाशय, उद्यान, घाटी, देव मंदिर, सागर–तट तथा स्वयं साधक का अपना घर उपासना के लिये उत्तम स्थान कहे गये हैं।[१]

उपासना में प्रवृत्त होने पर सबसे प्रथम अपने बाह्य और आभ्यन्तर शरीर (तन, मन, बुद्धि आदि बाह्य एवं आन्तरिक अंगोपांगों) को पवित्र करने की भावना के साथ निम्न मंत्र का उच्चारण किया जाना चाहिये –

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत्पुंडरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः।।

स्थान के चुनाव के पश्चात् कुश या ऊन के आसन पर बैठने से पूर्व उस आसन की शुद्धि कर लेनी चाहिये। आसन की शुद्धि के लिये जगत् को धारण करने वाली भगवती पृथ्वी से निम्न मंत्र से प्रार्थना की जानी चाहिये –

ॐ पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता।
त्वं च धारय मां देवि ! पवित्रं कुरु चासनम्।।

इसके पश्चात् पूर्वाभिमुख बैठकर ललाट में चन्दनादि का टीका लगाकर

---

१. पुण्यक्षेत्रं नदीतीरं गुहापर्वतमस्तकम्।
तीर्थप्रदेशः सिन्धूनां संगमं पावनं सरः।।१।।
उद्यानानि विचित्राणि बिल्वमूलं तटं गिरेः।
देवाद्यायतनं कूलं समुद्रस्य निजं गृहम्।।२।।

तत्त्वशुद्धि की क्रिया की जानी चाहिये। तत्त्व शुद्धि के लिये भावना के साथ क्रमशः निम्न मंत्रों का उच्चारण करना चाहिये–

ॐ ऐं आत्मतत्त्वं शोधयामि नमः स्वाहा (आचमन करें)
ॐ ह्रीं विद्यातत्त्वं शोधयामि नमः स्वाहा (पुनः आचमन)
ॐ क्लीं शिवतत्त्वं शोधयामि नमः स्वाहा (आचमन)
ॐ ऐं ह्रीं क्लीं सर्वतत्त्वं शोधयामि नमः स्वाहा।। (आचमन)

तदनन्तर गणेश तथा शिव आदि देवताओं और अपने गुरु की स्तुति एवं नमन के उपरान्त अनामिका अंगुली में कुश की पवित्री धारण करके दाएं हाथ में लाल पुष्प, अक्षत (बिना टूटे हुए चावल) एवं जल लेकर 'श्री तंत्र दुर्गासप्तशती' के पाठ या जप और हवन आदि का संकल्प निम्न प्रकार से लेना चाहिए –

'ॐ विष्णु र्विष्णुर्विष्णुः। ॐ नमः परमात्मने।

श्री पुराणपुरुषोत्तमस्य श्री विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य अद्य श्री ब्रह्मणो द्वितीयपरार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरेऽष्टाविंशतितमे कलियुगे प्रथमचरणे भारतवर्षान्तर्गते पुण्यप्रदेशे** फलप्राप्तिकामः श्री नवदुर्गाप्रसादेन सर्वबाधाविनिर्मुक्तः ***नामाहं श्री महाकालीमहालक्ष्मी महासर –स्वतीदेवताप्रीत्यर्थं श्रीतंत्रदुर्गासप्तशतीपुस्तकस्थापनपूजनपूर्वकं तांत्रिकशापोद्धारोत्कीलनमृतसंजीवनीविद्याया यथाविहितपाठ(जप)पुरःसरं तंत्रोक्तरात्रिसूक्तपाठानन्तरं (जपानन्तरं) यथाविहितनवार्णजपतांत्रिक– सप्तशतीन्यासध्यानपूर्वकं च 'ॐ ऐं श्रीं नमः' इत्यारभ्य 'ॐ ऐं ओं नमः' इत्यन्तं श्री तंत्रदुर्गासप्तशतीपाठं, तदन्ते च यथाविहितं न्यासादि –सहितनवार्णजपं तांत्रिकसप्तशती न्यासध्यानपूर्वकं च तांत्रिकदेवी –सूक्तपाठं (जपं) च करिष्ये।

संकल्प करने के बाद पुष्पाक्षत सहित जल को धरती पर डाल देना चाहिये।

** क्षेत्र या प्रदेश का नाम लें।
*** अपना नाम लें।

इसके बाद किसी पीठिका या छोटी चौकी पर पुस्तक की स्थापना करके उसमें भगवती की भावना करते हुए —

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणता स्म ताम् ॥

अथवा 'ॐ ऐं ह्रीं नमः' इस बीजमंत्र से पुस्तक की पंचोपचार पूजा करनी चाहिए।

इसके पश्चात् भगवती सप्तशती दुर्गा के यंत्र का निर्माण करके उसके विभिन्न भागों में निर्देशानुसार भगवती दुर्गा तथा अन्य देवी—देवताओं की स्थापना और षोडशोपचार पूजन संपन्न किया जाना चाहिये। दुर्गा—यंत्र विभिन्न ग्रन्थों में कुछ भिन्नता लिये मिलता है, किन्तु दुर्गा सप्तशती के अनुसार इसका निर्माण पूर्वादिक्रम (बाएं से दाएं) से किया जाना ही उचित है। यंत्र मुखपृष्ठ पर देखें।

दुर्गायन्त्रनिर्माणविधिः

त्रिकोणे—३। त्रिकोणाद्बाह्ये—६। षट्कोणेषु—६।
षट्कोणबाह्ये—४
अष्टपत्रेषु—२४। चतुर्विंशतिदलेषु—२४।
चतुर्विंशतिदलेभ्यो बाह्ये—
दिक्पालाः—१० आयुधानि—१०
भूपुरबाह्ये ४।

'यन्त्रस्थदेवता परिचयः'

१—	**त्रिकोणे बिन्दुमध्ये**	ह्रीं
२—	**त्रिकोणमध्ये**	ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे।
		ॐ मं मङ्गलायै नमः।
३—	**त्रिकोणाद्बाह्ये**	ॐ ब्रह्मणे नमः।
	पूर्वे	ॐ सरस्वत्यै नमः।
	नैर्ऋत्यकोणे—	ॐ विष्णवे नमः।
		ॐ श्रियै नमः।

वायव्यकोणे—	ॐ शिवाय नमः।
	ॐ उमायै नमः।
४— षट्कोणेषु पूर्वादिक्रमेण	ॐ नं नन्दजायै नमः।
	ॐ रं रक्तदन्तिकायै नमः।
	ॐ शां शाकंभर्य्यै नमः।
	ॐ दुं दुर्गायै नमः।
	ॐ भीं भीमायै नमः।
	ॐ भ्रां भ्रामर्यै नमः।

५— षट्कोणबाह्ये (वाहनादीनि)

दक्षिणे—	ॐ मं महिषाय नमः।
	ॐ कां कालाय नमः।
उत्तरे—	ॐ सिं सिंहाय नमः।
	ॐ मृं मृत्यवे नमः।

६— अष्टपत्रेषु पूर्वादिक्रमेण

पूर्वे—	ॐ जं जयायै नमः।
	ॐ ब्रां ब्राह्म्यै नमः।
	ॐ अं असिताङ्गभैरवाय नमः।
आग्नेय कोणे—	ॐ दों दोग्ध्र्यै नमः।
	ॐ वां वाराह्यै नमः।
	ॐ भीं भीषणभैरवाय नमः।
दक्षिणे—	ॐ अं अजितायै नमः।
	ॐ मां माहेश्वर्य्यै नमः।
	ॐ चं चण्डभैरवाय नमः।
नैर्ऋत्यकोणे—	ॐ अं अघोरायै नमः।
	ॐ नां नारसिंह्यै नमः।
	ॐ सं संहारभैरवाय नमः।
पश्चिमे—	ॐ निं नित्यायै नमः।
	ॐ कौं कौमार्यै नमः।
	ॐ उं उन्मत्तभैरवाय नमः।

वायव्यकोणे— ॐ विं विलासिन्यै नमः।
ॐ ऐं ऐन्द्र्यै नमः।[1]
ॐ कं कपालभैरवाय नमः।

उत्तरे— ॐ विं विजयायै नमः।
ॐ वैं वैष्णव्यै नमः।
ॐ रुं रुरुभैरवाय नमः।

ईशान कोणे— ॐ अं अपराजितायै नमः।
ॐ चां चामुण्डायै नमः।
ॐ क्रों क्रोधभैरवाय नमः।

७—चतुर्विंशतिदलेषु पूर्वादिक्रमेण:—

ॐ विं विष्णुमायायै नमः१। ॐ चें चेतनायै नमः२।
ॐ बुं बुद्ध्यै नमः३। ॐ निं निद्रायै नमः४।
ॐ क्षुं क्षुधायै नमः५। ॐ छां छायायै नमः६।
ॐ शं शक्त्यै नमः७। ॐ तृं तृष्णायै नमः८।
ॐ क्षां क्षान्त्यै नमः९। ॐ जां जात्यै नमः१०।
ॐ लं लज्जायै नमः११। ॐ शां शान्त्यै नमः१२।
ॐ श्रं श्रद्धायै नमः१३। ॐ क्रां कान्त्यै नमः१४।
ॐ लं लक्ष्म्यै नमः१५। ॐ धृं धृत्यै नमः१६।
ॐ वृं वृत्त्यै नमः१७। ॐ स्मृं स्मृत्यै नमः१८।
ॐ दं दयायै नमः१९। ॐ तुं तुष्ट्यै नमः२०।
ॐ पुं पुष्ट्यै नमः२१। ॐ मां मात्रे नमः२२।
ॐ भ्रां भ्रान्त्यै नमः२३। ॐ चिं चित्यै नमः२४।

१. ऐन्द्री के स्थान पर अपराजिता का उल्लेख मिलता है। वास्तव में, ऐन्द्री ही अपराजिता है।

८– **चतुर्विंशतिदलेभ्यो बाह्ये पूर्वादिक्रमेण**

दिग्पालाः

लं इन्द्राय नमः १। रं अग्नये नमः।२
मं यमाय नमः३। क्षं निर्ऋतये नमः४।
वं वरुणाय नमः५। यं वायवे नमः६।
सं सोमाय नमः७। हं ईशानाय नमः८।
ई॰पू॰ मध्ये – अं ब्रह्मणे नमः९।
प॰नि॰ मध्ये – ह्रीं अनन्ताय नमः१०।

आयुधानि

ॐ वं वज्राय नमः१। ॐ शं शक्तये नमः२।
ॐ दं दण्डाय नमः३। ॐ खं खड्गाय नमः४।
ॐ पां पाशाय नमः५। ॐ अं अंकुशाय नमः६।
ॐ गं गदायै नमः७। ॐ त्रिं त्रिशूलाय नमः८।
ॐ ई॰पू॰ पं पद्माय नमः९। ॐ प॰नि॰ चं चक्राय नमः१०।

९–भूपुरबाह्ये चतुष्कोणेषु

आग्नेय्याम्–क्षं क्षेत्रपालाय नमः१। **नैर्ऋत्याम्**–वं वटुकाय नमः२।
वायव्ये–यों योगिनीभ्यो नमः३। **ऐशान्याम्**–गं गणपतये नमः४।

उपर्युक्त विधि से सप्तशती यंत्र का निर्माण करके उसमें भगवती दुर्गा, अन्य देवी–देवताओं, दिक्पाल, आयुध तथा वाहन आदि का आवाहन करके षोडशोपचार से उनकी पूजा–अर्चना निम्न प्रकार से की जानी चाहिये–

षोडशोपचार दुर्गापूजनम्

संकल्पः

ॐ अद्येत्यादि मम 'अमुकगोत्रोत्पन्नयजमानस्य' इह जन्मनि सर्वापच्छान्तिपूर्वकदीर्घायुर्विपुलपुत्रपौत्राद्यविच्छिन्नसन्ततिवृद्धि स्थिरलक्ष्मीकीर्तिलाभशत्रुपराजयादिपुरःसरं चतुर्विधपुरुषार्थसिद्धये श्रीदुर्गापूजनमहं करिष्ये (कारयिष्ये)।

ध्यानम्

ॐ विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां
कन्याभिः करवालखेटविलसद्धस्ताभिरासेविताम्।
हस्तैश्चक्रगदेषुखेटविशिखांश्चापं गुणं तर्जनीं
विभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे।।

१. *आवाहनम्* –

आगच्छ वरदे देवि दैत्यदर्पनिषूदिनि।
पूजां गृहाण सुमुखि नमस्ते शङ्करप्रिये।।*

२. *आसनम्* –

अनेकरत्नसंयुक्तं नानामणिगणान्वितम्।
कार्तस्वरमयं दिव्यमासनं प्रतिगृह्यताम्।।

३. **पाद्यम्** –

गङ्गादिसर्वतीर्थेभ्यो मया प्रार्थनयाहृतम्।
तोयमेतत् सुखस्पर्शं पाद्यार्थं प्रतिगृह्यताम्।।

४. **अर्घ्यम्** –

गन्धपुष्पाक्षतै र्युक्तमर्घ्यं सम्पादितं मया।
गृहाण त्वं महादेवि प्रसन्ना भव सर्वदा।।

५. *आचमनम्* –

आचम्यतां त्वया देवि भक्तिं मे ह्यचलां कुरु।
ईप्सितं मे वरं देहि परत्र च परां गतिम्।।

६. *स्नानम्* –

जाह्नवीतोयमानीतं शुभं कर्पूरसंयुतम्।
स्नापयामि सुरश्रेष्ठे त्वां पुत्रादिफलप्रदाम्।।

---

* नित्य पूजा में या मंदिर में पूजन करते समय देवी का आवाहन और विसर्जन नहीं किया जाता।

पञ्चामृतस्नानम्

पयोदधिघृतं क्षौद्रं सितया च समन्वितम्।
पञ्चामृतमनेनाद्य कुरु स्नानं महेश्वरि।।

शुद्धोदकस्नानम्

परमानन्दबोधाब्धिनिमग्नानिजमूर्तये।
साङ्गोपाङ्गमिदं स्नानं कल्पयामि सुरेश्वरि।

७. वस्त्रम् –

वस्त्रं च सोमदैवत्यं लज्जायास्तु निवारणम्।
मया निवेदितं भक्त्या गृहाण परमेश्वरि।।

८. आभूषणम् –

हारकङ्कणकेयूरमेखलाकुण्डलादिकम्।
रत्नाढ्यं कुण्डलोपेतं भूषणं प्रतिगृह्यताम्।।

सिन्दूरम्

सिन्दूरमरुणाभासं जपाकुसुमसन्निभम्।
पूजितासि मया देवि प्रसीद परमेश्वरि।।

कज्जलम्

चक्षुर्भ्यां कज्जलं रम्यं सुभगे शान्तिकारके।
कर्पूरज्योतिरुत्पन्नं गृहाण परमेश्वरि।।

सौभाग्यद्रव्यम्

सौभाग्यसूत्रं वरदे सुवर्णमणिसंयुते।
कण्ठे बध्नामि देवेशि सौभाग्यं देहि मे सदा।।

सुगन्धितैलम्

चन्दनागरुकर्पूरकुङ्कुमं रोचनं तथा।
कस्तूर्यादिसुगन्धांश्च सर्वाङ्गेषु विलेपनम्।।

परिमलद्रव्यम्

हरिद्रारञ्जिते देवि सुखसौभाग्यदायिनि।
तस्मात् त्वां पूजयाम्यद्यसुखं शान्तिं प्रयच्छ मे।।

अक्षतान्

रञ्जिताः कुंकुमौघेन अक्षताश्चातिशोभनाः।
मामेषां देवि दानेन प्रसन्ना भव शोभने।।

पुष्पाणि

मन्दारपारिजातादि पाटलीकेतकानि च।
जातीचम्पकपुष्पाणि गृहाणेमानि शोभने।।

बिल्वपत्रम्

अमृतोद्भवश्रीवृक्षो महादेवि प्रियः सदा।
बिल्वपत्रं प्रयच्छामि पवित्रं ते सुरेश्वरि।।

९. *गन्धम्* –

परमानन्दसौभाग्यपरिपूर्णदिगन्तरे।
गृहाण परमं गन्धं कृपया परमेश्वरि।।

कुङ्कुमम्

कुङ्कुमं कान्तिदं दिव्यं कामिनीकामसंभवम्।
कुङ्कुमेनार्चिते देवि प्रसीद परमेश्वरि।।

१०. पुष्पमालाम् –

सुरभिपुष्पनिचयै ग्रथितां पुष्पमालिकाम्।
ददामि तव शोभार्थं गृहाण परमेश्वरि।।

११. *धूपम्* –

दशाङ्गगुग्गुलंधूपंचन्दनागरुसंयुतम्।
समर्पितं मया भक्त्या महादेवि प्रगृह्यताम्।।

१२. *दीपम्* –

घृतवर्तिसमायुक्तं महातेजो महोज्ज्वलम्।
दीपं ददामि देवेशि सुप्रीता भव सर्वदा।।

१३. *नैवेद्यम्* –

अन्नं चतुर्विधं स्वादु रसैः षड्भिः समन्वितम्।
नैवेद्यं गृह्यतां देवि भक्तिं मे ह्यचलां कुरु।।

ताम्बूलपूगीफलानि

एलालवङ्गकस्तूरीकर्पूरैः पुष्पवासिताम्।
वीटिकां मुखवासार्थमर्पयामि सुरेश्वरि।।

१४. *नमस्कारम्* –

सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिस्वरूपिणि।
पूजां गृहाण कौमारि जगन्मात र्नमोऽस्तुते।।

आरतिकम्

नीराजनं सुमाङ्गल्यं कर्पूरैः समन्वितम्।
चन्द्रार्कवह्निसदृशं महादेवि नमोऽस्तुते।।

पुष्पाञ्जलिः

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदार्द्रचित्ता।।

१५. *प्रदक्षिणा* –

नमस्ते देवि देवेशि नमस्ते ईप्सितप्रदे।
नमस्ते जगतां धात्रि नमस्ते भक्तवत्सले।।

१६. *विसर्जनम्* –

इमां पूजां मया देवि यथाशक्त्या महेश्वरि।
रक्षार्थं त्वं समादाय व्रज स्थानं यथोत्तमम्।।*

भगवती की षोडशोपचार पूजा के उपरान्त शापोद्धार आदि की क्रिया संपन्न कर लेनी चाहिए। शापोद्धार के लिए '**ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं क्रां क्रीं चण्डिकादेव्यै शापनाशानुग्रहं कुरु कुरु स्वाहा**' इस मंत्र का 7 बार (पाठ के अन्त में भी ७ बार) जप करना चाहिये।

इसके बाद – **ॐ श्रीं क्लीं ह्रीं सप्तशति चण्डिके उत्कीलनं कुरु कुरु स्वाहा**' इस उत्कीलन–मंत्र का २१ बार (अन्त में भी २१ बार) जप करना चाहिये।

उत्कीलन के उपरान्त मृतसंजीवनी मंत्र '**ॐ ह्रीं ह्रीं वं वं ऐं ऐं मृतसंजीवनि विद्ये मृतमुत्थापयोत्थापय क्रीं ह्रीं ह्रीं वं स्वाहा**' इस मंत्र का ७ बार (अन्त में भी ७ बार) पाठ करना चाहिये।

शापोद्धारादि के पश्चात् तंत्र दुर्गासप्तशती के निम्नांकित तंत्रोक्त रात्रिसूक्त का पाठ (जप) करना चाहिये–

***ॐ ऐं ह्रीं नमः१। ॐ ऐं स्रां (स्त्रां) नमः२।**
ॐ ऐं स्लूं नमः३। ॐ ऐं क्रैं नमः४।
ॐ ऐं त्रां नमः५। ॐ ऐं फ्रां नमः६।
ॐ ऐं जीं नमः७। ॐ ऐं लूं नमः८।
ॐ ऐं स्लूं नमः९। ॐ ऐं नों नमः१०।
ॐ ऐं स्त्रीं नमः११। ॐ ऐं प्रूं नमः१२।
ॐ ऐं सूं नमः१३। ॐ ऐं जां नमः१४।
ॐ ऐं बौं नमः१५। ॐ ऐं ओं नमः१६।**

---

* नित्य पूजा में देवी का विसर्जन नहीं किया जाता।

* तंत्र दुर्गासप्तशती के साधक विद्वद्वर श्री शिवदत्त शास्त्री के अनुसार 'तंत्र दुर्गासप्तशती के पाठ में षडंग (कवच, अर्गला, कीलक, प्राथमिक रहस्य, वैकृतिक रहस्य तथा मूर्ति रहस्य) पाठ नहीं करना चाहिये।

** पाठान्तर

नवार्ण मंत्र का विनियोग–न्यासादि

तांत्रिक रात्रिसूक्त के पाठ या जप के उपरान्त नवार्ण मंत्र का कम से कम १०८ बार जप किया जाना चाहिये। नवार्ण मंत्र के जप के पहले इस महामंत्र का विनियोग, न्यास तथा ध्यान आदि सम्पन्न किये जाने का विधान है।

विनियोग

नवार्ण मंत्र का जप आरंभ करने से पहले ऋषि, छन्द, देवता, बीज, शक्ति तथा कीलक का उल्लेख करने वाले निम्नांकित मंत्र को पढ़ते हुए इसका विनियोग सम्पन्न करना चाहिये –

श्रीगणपतिर्जयति। ॐ नवार्णमंत्रस्य ब्रह्मविष्णुरुद्रा ऋषयः, गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांसि श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवता, ऐं बीजम्, ह्रीं शक्तिः, क्लीं कीलकम्, श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः।

न्यास

न्यास क्रिया में मंत्रों को चेतन और मूर्तिमान मानकर उन–उन अंगों का नाम लेकर उन मंत्ररूप देवताओं का ही स्पर्श और वन्दन किया जाता है। ऐसा करने से पाठ या जप करने वाला व्यक्ति मंत्रमय हो जाता है तथा मंत्र में अधिष्ठित देवता उसकी रक्षा करते हैं। इसके अतिरिक्त न्यास द्वारा उसके बाहर–भीतर की शुद्धि होती है। इसमें साधक को असीम दैवी शक्ति प्राप्त होती है और उसकी साधना निर्विघ्न पूर्ण होती है।

न्यास पांच प्रकार के होते हैं

1. ऋष्यादिन्यास 2. करन्यास 3. हृदयादिन्यास

4. अक्षरन्यास, तथा 5. दिङ्न्यास।

ऋष्यादिन्यास

ऋष्यादि न्यास में निम्नांकित पांच मंत्रों का अलग–अलग उच्चारण करते हुए क्रमशः सिर, मुख, हृदय, गुदा, दोनों चरण तथा नाभि–इन पांच अंगों को दाहिने हाथ की अंगुलियों से स्पर्श करना चाहियेः–

ब्रह्मविष्णुरुद्रऋषिभ्यो नमः,(शिरसि)। गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्छन्दोभ्यो नमः, (मुखे)। महाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीदेवताभ्यो नमः, (हृदि)। ऐं बीजाय नमः, (गुह्ये)। ह्रीं शक्तये नमः, (पादयोः)। क्लीं कीलकाय नमः, (नाभौ)। तदनन्तर *'ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे', इस मूलमन्त्र का उच्चारण करते हुए दोनों हाथों का परस्पर स्पर्श करके कर–शुद्धि करनी चाहिये।

करन्यास

करन्यास में हाथ की विभिन्न अँगुलियों, हथेलियों और हाथ के पृष्ठ भाग में निम्न बीजमन्त्रों का न्यास (स्थापन) किया जाता है–

ॐ ऐं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः

(दोनों हाथों की तर्जनी अँगुलियों से दोनों अँगूठों का स्पर्श करें)

ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः

(दोनों हाथों की तर्जनी अँगुलियों से दोनों अँगूठों का स्पर्श करें)

ॐ क्लीं मध्यमाभ्यां नमः

(अँगूठों से दोनों मध्यमा अँगुलियों का स्पर्श करें)

ॐ चामुण्डायै अनामिकाभ्यां नमः

(अँगूठों से अनामिका अँगुलियों का स्पर्श करें)

ॐ विच्चे कनिष्ठिकाभ्यां नमः

(अँगूठों से कनिष्ठिका अँगुलियों का स्पर्श करें)

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः

(हथेलियों और उनके पृष्ठ भागों का परस्पर स्पर्श करें)

* नवार्ण मंत्र के आरम्भ में ॐ लगाने की आवश्यकता नहीं है।

हृदयादिन्यास

हृदयादिन्यास में निम्नांकित मंत्र पढ़ते हुए दाहिने हाथ की पाँचों अँगुलियों से हृदय आदि अंगों का स्पर्श किया जाता है।

ॐ ऐं हृदयाय नमः

(दाहिने हाथ की पाँचों अँगुलियों से हृदय का स्पर्श करें।

ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा

(सिर का स्पर्श करें)

ॐ क्लीं शिखायै वषट्

(शिखा का स्पर्श करें)

ॐ चामुण्डायै कवचाय हुम्

(दाहिने हाथ की अँगुलियों से बाएं कंधे का और बाएं हाथ की अँगुलियों से दाहिने कंधे का एक साथ ही स्पर्श करें)

ॐ विच्चे नेत्रत्रयाय वौषट्

(दाहिने हाथ की अँगुलियों से दोनों नेत्रों तथा ललाट के मध्य भाग का स्पर्श करें)

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे अस्त्राय फट्

(यह मंत्र पढ़कर दाहिने हाथ को सिर के ऊपर से बाँयी ओर से पीछे की ओर ले जाकर दाहिनी ओर से आगे की ओर ले आयें तथा तर्जनी तथा मध्यमा अँगुलियों से बायें हाथ की हथेली पर ताली बजाएं।)

अक्षरन्यास

निम्नांकित मंत्रों को पढ़ते हुए क्रमशः शिखा आदि का दाहिने हाथ की अँगुलियों से स्पर्श करें–

ॐ ऐं नमः शिखायाम्। **ॐ ह्रीं नमः** दक्षिणनेत्रे।
ॐ क्लीं नमः वामनेत्रे। **ॐ चां नमः** दक्षिणकर्णे।

ॐ मुं नमः वामकर्णे। **ॐ डां नमः** दक्षिणनासापुटे।
ॐ यैं नमः वामनासापुटे। **ॐ विं नमः** मुखे।
ॐ विच्चें नमः गुह्ये।

इस प्रकार अक्षरन्यास करके **ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे**, इस मन्त्र को आठ बार पढ़ते हुए दोनों हाथों द्वारा सिर से लेकर पैर तक सभी अंगों का स्पर्श करें।

दिङ्न्यास

दिङ्न्यास में निम्नांकित दस मंत्रों को पढ़ते हुए क्रमशः मंत्र के देवताओं की स्थापना चुटकी बजाते हुए दशों दिशाओं में करें।

ॐ ऐं प्राच्यै नमः। ॐ ऐं आग्नेय्यै नमः।
ॐ ह्रीं दक्षिणायै नमः। ॐ ह्रीं नैर्ऋत्यै नमः।
ॐ क्लीं प्रतीच्यै नमः। ॐ क्लीं वायव्यै नमः।
ॐ चामुण्डायै उदीच्यै नमः। ॐ चामुण्डायै ऐशान्यै नमः।
ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ऊर्ध्वाय नमः।
ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे भूम्यै नमः।

ध्यानम्

महाकाली

खड्गं चक्रगदेषुचापपरिघाञ्छूलम्भुशुण्डीं शिरः
शंङ्खं संदधतीङ्करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषावृताम्।
नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकां
यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम्॥ १॥

महालक्ष्मी

अक्षस्रक्परशुं गदेषुकुलिशं पद्मं धनुःकुण्डिकां
दण्डं शक्तिमसिं च चर्मजलजं घण्टां सुराभाजनम्।
शूलं पाशसुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रसन्नाननाम्।
सेवे सैरिभमर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम्॥ २॥

महासरस्वती

घण्टाशूलहलानि शङ्खमुसले चक्रं धनुःसायकं
हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम्।
गौरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामाधारभूतां महा
पूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादिदैत्यार्दिनीम्।। ३।।

माला पूजन मंत्र

भगवती के ध्यान के बाद **'ऐं ह्रीं अक्षमालिकायै नमः'** मन्त्र से माला की पूजा करके निम्न मन्त्र से माला की प्रार्थना करनी चाहिये–

ॐ मां माले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणि।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मात् मे सिद्धिदा भव।। १।।
ॐ अविघ्नं कुरु माले त्वं गृह्णामि दक्षिणे करे।
जपकाले च सिद्ध्यर्थं प्रसीद मम सिद्धये।। २।।

इसके बाद – **'ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे'** इस मंत्र का १०८ बार जप करे। जप पूर्ण करने के पश्चात्

गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादात् महेश्वरि।।

यह श्लोक पढ़कर भावना पूर्वक देवी के बाएं हाथ में जप का फल समर्पित कर देना चाहिये।

इतिनवार्णजपविधिः

श्रीतन्त्रदुर्गासप्तशती का विनियोग–न्यास–ध्यानादि।

नवार्ण मंत्र का विधि के अनुसार जप पूर्ण करने के बाद सप्तशती का विनियोग न्यास और ध्यान करना चाहिये।

विनियोग:

प्रथममध्यमोत्तमचरित्राणां ब्रह्माविष्णुरुद्रा ऋषय: श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवता:, गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांसि नन्दाशाकंभरीभीभा: शक्तय:, रक्तदन्तिकादुर्गाभ्रामर्यो बीजानि, अग्निवायुसूर्यास्तत्त्वानि, ऋग्यजु:सामवेदा ध्यानानि, सकलकामनासिद्धये श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वती प्रीत्यर्थे जपे विनियोग:।

करन्यास:

१. ॐ ऐं स्लूं नम: अङ्गुष्ठाभ्यां नम:।
२. ॐ ऐं फ्रें नम: तर्जनीभ्यां नम:।
३. ॐ ऐं क्रीं नम: मध्यमाभ्यां नम:।
४. ॐ ऐं म्लूं नम: अनामिकाभ्यां नम:।
५. ॐ ऐं घ्रैं नम: कनिष्ठिकाभ्यां नम:।
६. ॐ ऐं श्रूं नम: करतलकरपृष्ठाभ्यां नम:।

---

१. खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा।
शंखिनी चापिनी बाणभुशुण्डी परिघायुधा।।
२. ॐ शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके।
घण्टा स्वनेन न: पाहि चापज्यानि:स्वनेन च।
३. प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे।
भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि।।
४. ॐ सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते।
यानि चात्यर्थघोराणि तै: रक्षास्मांस्तथा भुवम्।।
५. ॐ खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके।
करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वत:।
६. ॐ सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशवितसमन्विते।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तुते।

हृदयादिन्यासः

१. ३ॐ ऐं स्लूं नमः हृदयाय नमः।
२. ३ॐ ऐं फ्रें नमः शिरसे स्वाहा।
३. ३ॐ ऐं क्रीं नमः शिखायै वषट्।
४. ३ॐ ऐं म्लूं नमः कवचाय हुम्।
५. ३ॐ ऐं घ्रैं नमः नेत्रत्रयायवौषट्।
६. ३ॐ ऐं श्रूं नमः अस्त्राय फट्।

---

१. खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा।
शंखिनी चापिनी बाणभुशुण्डी परिघायुधा।। —हृदयाय नमः।
२. ३ॐ शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके।
घण्टा स्वनेन नः पाहि चापज्यानिःस्वनेन च। —शिरसे स्वाहा।
३. प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे।
भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि।। —शिखायै वषट्।
४. ३ॐ सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते।
यानि चात्यर्थघोराणि तैः रक्षास्मांस्तथा भुवम्।। —कवचाय हुम्।
५. ३ॐ खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके।
करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः। —नेत्रत्रयायवौषट्।
६. ३ॐ सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशवितसमन्विते।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तुते। .... अस्त्राय फट्।

ध्यानम्

विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कधस्थितां भीषणां
कन्याभिःकरवालखेटविलसद्धस्ताभिरासेविताम्।
हस्तैश्चक्रगदासिखेटविशिखां श्चापं गुणं तर्जनीं
विभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे।।

इति श्रीतन्त्रादुर्गासप्तशती–विनियोग–न्यास ध्यानादि।।

श्री तंत्रदुर्गासप्तशती

(सप्तशत्या गुह्यबीजनामावलि)

अथ श्रीतन्त्रदुर्गासप्तशती

श्री गणेशाय नमः

अथ प्रथमोऽध्यायः

विनियोगः

ॐ प्रथमचरित्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, महाकाली देवता, गायत्री छन्दः, नन्दा शक्तिः, रक्तदन्तिका बीजम्, अग्निस्तत्त्वम्, ऋग्वेदः स्वरूपम्, श्रीमहाकालीप्रीत्यर्थे प्रथमचरित्रजपे (पाठे) विनियोगः।

ध्यानम्

खड्गं चक्रगदेषुचापपरिघाञ्छूलं भुशुण्डीं शिरः
शङ्खं संदधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषावृताम्।
नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकाम्।
यामस्तौत् स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम्॥

ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे। ॐ बीजत्रयायै विद्महे तत्प्रधानायै धीमहि। तन्नः शक्तिः प्रचोदयात्।

ॐ ऐं श्रीं* नमः१। ॐ ऐं ह्रीं नमः२।

ॐ नमश्चण्डिकायै

'ॐ ऐं' मार्कण्डेय उवाच॥१॥

सावर्णिः सूर्यतनयो यो मनुः कथ्यतेऽष्टमः।
निशामय तदुत्पत्तिं विस्तराद् गदतो मम॥२॥

---

* श्रां इति ग पुस्तके।

ॐ ऐं क्लीं नमः३। ॐ ऐं श्रीं नमः४।
ॐ ऐं प्रीं नमः५। ॐ ऐं ह्रां[1] नमः६।
ॐ ऐं ह्रीं नमः७। ॐ ऐं स्रौं नमः८।
ॐ ऐं प्रें नमः९। ॐ ऐं म्रीं[2] नमः१०।
ॐ ऐं ह्लीं[3] नमः११। ॐ ऐं म्लीं नमः१२।

महामायानुभावेन यथा मन्वन्तराधिपः।
स बभूव महाभागः सावर्णिस्तनयो रवेः।।३।।
स्वारोचिषेऽन्तरे पूर्वं चैत्रवंशसमुद्भवः।
सुरथो नाम राजाभूत्समस्ते क्षितिमण्डले।।४।।
तस्य पालयतः सम्यक् प्रजाः पुत्रानिवौरसान्।
बभूवुः शत्रवो भूपाः कोलाविध्वंसिनस्तदा।।५।।
तस्य तैरभवद् युद्धमतिप्रबलदण्डिनः।
न्यूनैरपि स तैर्युद्धे कोलाविध्वंसिभिर्जितः।।६।।
ततः स्वपुरमायातो निजदेशाधिपोऽभवत्।
आक्रान्तः स महाभागस्तैस्तदा प्रबलारिभिः।।७।।
अमात्यैर्बलिभिर्दुष्टैर्दुर्बलस्य दुरात्मभिः।
कोशो बलं चापहृतं तत्रापि स्वपुरे ततः।।८।।
ततो मृगयाव्याजेन हृतस्वाम्यः स भूपतिः।
एकाकी हयमारुह्य जगाम गहनं वनम्।।९।।
स तत्राश्रममद्राक्षीद् द्विजवर्यस्य मेधसः।
प्रशान्तश्वापदाकीर्णं मुनिशिष्योपशोभितम्।।१०।।
तस्थौ कंचित्स कालं च मुनिना तेन सत्कृतः।
इतश्चेतश्च विचरंस्तस्मिन्मुनिवराश्रमे।।११।।
सोऽचिन्तयत्तदा तत्र ममत्वाकृष्टचेतनः।
मत्पूर्वैः पालितं पूर्वं मया हीनं पुरं हि तत्।।१२।।

१. हुं इति ख पुस्तके। २. श्रीं इति पाठान्तरम्। ३. ह्लीं इति ख–ग पुस्तके।

ॐ ऐं स्त्रीं नमः१३। ॐ ऐं क्रां नमः१४।
ॐ ऐं ह्स्लीं* नमः१५। ॐ ऐं क्रीं नमः१६।
ॐ ऐं चां नमः१७। ॐ ऐं भें** नमः१८।
ॐ ऐं क्रीं नमः१९। ॐ ऐं वैं नमः२०।
ॐ ऐं ह्रौं नमः२१। ॐ ऐं युं नमः२२।

मद्भृत्यैस्तैरसद्वृत्तै धर्मतः पाल्यते न वा।
न जाने स प्रधानो मे शूरहस्ती सदामदः।।१३।।
मम वैरिवशं यातः कान् भोगानुपलप्स्यते।
ये ममानुगता नित्यं प्रसादधनभोजनैः।।१४।।
अनुवृत्तिं ध्रुवं तेऽद्य कुर्वन्त्यन्यमहीभृताम्।
असम्यग्व्ययशीलैस्तैः कुर्वद्भिः सततं व्ययम्।।१५।।
संचितः सोऽतिदुःखेन क्षयं कोशो गमिष्यति।
एतच्चान्यच्च सततं चिन्तयामास पार्थिवः।। १६।।
तत्र विप्राश्रमाभ्याशे वैश्यमेकं ददर्श सः।
स पृष्टस्तेन कस्त्वं भो हेतुश्चागमनेऽत्र कः।। १७।।
सशोक इव कस्मात्त्वं दुर्मना इव लक्ष्यसे।
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य भूपतेः प्रणयोदितम्।।१८।।
प्रत्युवाच स तं वैश्यः प्रश्रयावनतो नृपम्।।१९।।

वैश्य उवाच।।२०।।

समाधिर्नाम वैश्योऽहमुत्पन्नो धनिनां कुले।।२१।।
पुत्रदारैर्निरस्तश्च धनलोभादसाधुभिः।
विहीनश्च धनैर्दारैः पुत्रैरादाय मे धनम्।।२२।।

---

* ह्लीं इति ग पुस्तके। ** भें इति ग पुस्तके,
(क पुस्तके बीजं नास्ति, ख पुस्तके पृष्ठमेव नास्ति)

ॐ ऐं जुं नमः२३। ॐ ऐं हं[4] नमः२४।
ॐ ऐं शां नमः२५। ॐ ऐं रौं[5] नमः२६।
ॐ ऐं यं नमः२७। ॐ ऐं विं नमः२८।
ॐ ऐं वैं नमः२९। ॐ ऐं चें[6] नमः३०।
ॐ ऐं ह्रीं नमः३१। ॐ ऐं क्रूं नमः३२।
ॐ ऐं सं नमः३३। ॐ ऐं कं नमः३४।

वनमभ्यागतो दुःखी निरस्तश्चाप्तबन्धुभिः।
सोऽहं न वेद्मि पुत्राणां कुशलाकुशलात्मिकाम्॥२३॥
प्रवृत्तिं स्वजनानां च दाराणां चात्र संस्थितः।
किं नु तेषां गृहे क्षेममक्षेमं किं नु साम्प्रतम्॥२४॥
कथं ते किं नु सद्वृत्ता दुर्वृत्ताः किं नु मे सुताः॥२५॥

राजोवाच॥२६॥

यैर्निरस्तो भवाँल्लुब्धैः पुत्रदारादिभिर्धनैः॥२७॥
तेषु किं भवतः स्नेहमनुबध्नाति मानसम्॥२८॥

वैश्य उवाच॥२९॥

एवमेतद्यथा प्राह भवानस्मद्गतं वचः॥३०॥
किं करोमि न बध्नाति मम निष्ठुरतां मनः॥
यैः संत्यज्य पितृस्नेहं धनलुब्धैर्निराकृतः॥३१॥
पतिस्वजनहार्दं च हार्दि तेष्वेव मे मनः।
किमेतन्नाभिजानामि जानन्नपि महामते॥३२॥
यत्प्रेमप्रवणं चित्तं विगुणेष्वपि बन्धुषु।
तेषां कृते मे निःश्वासो दौर्मनस्यं च जायते॥३३॥
करोमि किं यन्न मनस्तेष्वप्रीतिषु निष्ठुरम्॥३४॥

---

४. हैं इति पाठान्तरम्। ५. रों इति ख–ग पुस्तके। ६. चैं इति पाठान्तरम्।

ॐ ऐं श्रीं*[१] नमः३५।	ॐ ऐं त्रों नमः३६।
ॐ ऐं स्त्रां नमः३७।	ॐ ऐं ज्यं*[२] नमः३८।
ॐ ऐं रौं नमः३९।	ॐ ऐं द्रां नमः४०।
ॐ ऐं ह्रां*[३] नमः४१।	ॐ ऐं ह्रां नमः४२।
ॐ ऐं द्रूं नमः४३।	ॐ ऐं शां नमः४४।
ॐ ऐं क्रीं*[४] नमः४५।	ॐ ऐं श्रौं नमः४६।

मार्कण्डेय उवाच।।३५।।

ततस्तौ सहितौ विप्र तं मुनिं समुपस्थितौ।।३६।।
समाधिर्नाम वैश्योऽसौ स च पार्थिवसत्तमः ।
कृत्वा तु तौ यथान्यायं यथार्हं तेन संविदम्।।३७।।
उपविष्टो कथाः काश्चिच्चक्रतुर्वैश्यपार्थिवौ।।३८।।

राजोवाच।।३९।।

भगवंस्त्वामहं प्रष्टुमिच्छाम्येकं वदस्व तत्।।४०।।
दुःखाय यन्मे मनसः स्वचित्तायत्ततां विना ।
ममत्वं गतराज्यस्य राज्याङ्गेष्वखिलेष्वपि।।४१।।
जानतोऽपि यथाज्ञस्य किमेतन्मुनिसत्तम।
अयं च निष्कृतः पुत्रैर्दारैर्भृत्यैस्तथोज्झितः।।४२।।
स्वजनेन च संत्यक्तस्तेषु हार्दी तथाप्यति।
एवमेष तथाहं च द्वावप्यत्यन्तदुःखितौ।।४३।।
दृष्टदोषेऽपि विषये ममत्वाकृष्टमानसौ।
तत्किमेतन्महाभाग यन्मोहो ज्ञानिनोरपि।।४४।।
ममास्य च भवत्येषा विवेकान्धस्य मूढता।।४५।।

ऋषिरुवाच।।४६।।

*[१] श्रां इति ग पुस्तके। *[२] ज्यों इति ग पुस्तके, ख पुस्तके पृष्ठं नास्ति।
*[३] द्रों इति ग पुस्तके, ख पुस्तके पुष्ठं नास्ति। *[४] मीं इति ग पुस्तके।

ॐ ऐं जुं[७] नमः४७। ॐ ऐं हल्रूं[८] नमः४८।
ॐ ऐं श्रूं नमः४९। ॐ ऐं प्रीं नमः५०।
ॐ ऐं रं नमः५१। ॐ ऐं वं[९] नमः५२।
ॐ ऐं ब्रों[१०] नमः५३। ॐ ऐं ब्लं[११] नमः५४।
ॐ ऐं स्त्रां* नमः५५। ॐ ऐं ल्वां[१२] नमः५६।

ज्ञानमस्ति समस्तस्य जन्तोर्विषयगोचरे।
विषयश्च महाभाग याति चैवं पृथक् पृथक्।।४७।।
दिवान्धाः प्राणिनः केचिद्रात्रावन्धस्तथापरे।
केचिद्दिवा तथा रात्रौ प्राणिनस्तुल्यदृष्टयः।।४८।।
ज्ञानिनो मनुजाः सत्यं किं तु ते न हि केवलम्।
यतो हि ज्ञानिनः सर्वे पशुपक्षिमृगादयः।।४९।।
ज्ञानं च तन्मनुष्याणां यत्तेषां मृगपक्षिणाम्।
मनुष्याणां च यत्तेषां तुल्यमन्यत्तथोभयोः।।५०।।
ज्ञानेऽपि सति पश्यैतान् पतङ्गाञ्छावचञ्चुषु।
कणमोक्षादृतान्मोहात्पीडयमानानपि क्षुधा।।५१।।
मानुषा मनुजव्याघ्र साभिलाषाः सुतान् प्रति।
लोभात्प्रत्युपकाराय नन्वेतान् किं न पश्यसि।।५२।।
तथापि ममतावर्त्ते मोहगर्ते निपातिताः।
महामायाप्रभावेण संसारस्थितिकारिणा।।५३।।
तन्नात्र विस्मयः कार्यो योगनिद्रा जगत्पतेः।
महामाया हरेश्चैषा तया संमोह्यते जगत्।।५४।।
ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति।।५५।।
तया विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम्।।५६।।

---

७. जं इति पाठान्तरम्। ८. ह्लरुं इति ख पुस्तके। ९. वां इति पाठान्तरम्।
१०. व्रीं इति इति ख–ग पुस्तके। ११. ब्लूं इति इति ख–ग पुस्तके।
* स्त्रौं इति ग पुस्तके। १२. व्लां इति पाठान्तरम्।

ॐ ऐं लूं[१३] नमः५७। ॐ ऐं सां नमः५८।
ॐ ऐं रौं[१४] नमः५९। ॐ ऐं स्हौं नमः६०।
ॐ ऐं क्रूं नमः६१। ॐ ऐं शौं[१५] नमः६२।
ॐ ऐं श्रौं[१६] नमः६३। ॐ ऐं वं नमः६४।
ॐ ऐं त्रूं[१७] नमः६५। ॐ ऐं क्रौं नमः६६।
ॐ ऐं क्लूं नमः६७। ॐ ऐं क्लीं नमः६८।

सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये॥
सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी॥५७॥
संसारबन्धहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी॥५८॥

राजोवाच॥५९॥

भगवन् का हि सा देवी महामायेति यां भवान्॥६०॥
ब्रवीति कथमुत्पन्ना सा कर्मास्याश्च किं द्विज।
यत्प्रभावा च सा देवी यत्स्वरूपा यदुद्भवा॥६१॥
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदां वर॥६२॥

ऋषिरुवाच॥६३॥

नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम्॥६४॥
तथापि तत्समुत्पत्तिर्बहुधा श्रूयतां मम।
देवानां कार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा॥६५॥
उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते।
योगनिद्रां यदा विष्णुर्जगत्येकार्णवीकृते॥६६॥
आस्तीर्य शेषमभजत्कल्पान्ते भगवान् प्रभुः।
तदा द्वावसुरौ घोरौ विख्यातौ मधुकैटभौ॥६७॥
विष्णुकर्णमलोद्भूतौ हन्तुं ब्रह्माणमुद्यतौ।
स नाभिकमले विष्णोः स्थितो ब्रह्मा प्रजापतिः॥६८॥

१३. स्लूं इति पाठान्तरम्। १४. रों इति पाठान्तरम्। १५. शों इति पाठान्तरम्।
१६. श्रीं इति पाठान्तरम्। १७. भैं इति पाठान्तरम्।

ॐ ऐं श्रीं[१८] नमः:६९। ॐ ऐं ब्लूं[१९] नमः:७०।
ॐ ऐं ठां[२०] नमः:७१। ॐ ऐं ह्रीं[२१] नमः:७२।
ॐ ऐं स्त्रां[२२] नमः:७३। ॐ ऐं स्लूं नमः:७४।
ॐ ऐं क्रैं[२३] नमः:७५। ॐ ऐं त्रां* नमः:७६।
ॐ ऐं फ्रां नमः:७७। ॐ ऐं जीं नमः:७८।

दृष्ट्वा तावसुरौ चोग्रौ प्रसुप्तं च जनार्दनम्।
तुष्टाव योगनिद्रां तामेकाग्रहृदयस्थितः।।६९।।
विबोधनार्थाय हरेर्हरिनेत्रकृतालयाम्।
विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थितिसंहारकारिणीम्।।७०।।
निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः।।७१।।

ब्रह्मोवाच।।७२।।

त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कारः स्वरात्मिका।।७३।।
सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता।
अर्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः।।७४।।
त्वमेव संध्या सावित्री त्वं देवि जननी परा।
त्वयैतद्धार्यते विश्वं त्वयैतत्सृज्यते जगत्।।७५।।
त्वयैतत्पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा।
विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरूपा च पालने।।७६।।
तथा संहृतिरूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये।
महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः।।७७।।
महामोहा च भवती महादेवी महासुरी।
प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य गुणत्रयविभाविनी।।७८।।

१८. स्रीं इति पाठान्तरम्। १९. व्रीं इति पाठान्तरम्। २०. वीं इति पाठान्तरम्।
२१. ठ्रीं इति ख—ग पुस्तके। २२. स्त्रीं इति ख, स्नां इति ग पुस्तके, * स्नां इति ग पुस्तके।
२३. क्रं, इति ख पुस्तके, क्रें इति पाठान्तरम्। * च्रां इति ग पुस्तके, ख॰पु॰पृ॰ नास्ति।

ॐ ऐं लूं* नमः७९। ॐ ऐं स्लूं नमः८०।
ॐ ऐं नों नमः८१। ॐ ऐं स्त्रीं[२४] नमः८२।
ॐ ऐं प्रूं[२५] नमः८३। ॐ ऐं सूं[२६] नमः८४।
ॐ ऐं ज्रां[२७] नमः८५। ॐ ऐं बौं[२८] नमः८६।
ॐ ऐं ओं[२९] नमः८७। ॐ ऐं श्रौं नमः८८।

कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा।
त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्बोधलक्षणा॥७९॥
लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टि स्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च।
खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा॥८०॥
शङ्खिनी चापिनी बाणभुशुण्डीपरिघायुधा।
सौम्या सौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी॥८१॥
परापराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी।
यच्च किंचित्क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके॥८२॥
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा।
यया त्वया जगत्स्रष्टा जगत्पात्यत्ति यो जगत्॥८३॥
सोऽपि निद्रावशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः।
विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव च॥८४॥
कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत्।
सा त्वमित्थं प्रभावैः स्वैरुदारै र्देवि संस्तुता॥८५॥
मोहयैतौ दुराधर्षावसुरौ मधुकैटभौ।
प्रबोधं च जगत्स्वामी नीयतामच्युतो लघु॥८६॥
बोधश्च क्रियतामस्य हन्तुमेतौ महासुरौ॥८७॥

ऋषिरुवाच॥८८॥

---

* जूं इति ग पुस्तके,ख॰पु॰पृ॰ नास्ति। २४. स्त्रीं इति पाठान्तरम्। २५. प्रं इति ख, प्रीं इति ग पुस्तके। २६. सं इति ख पुस्तके। २७. श्रां इति पाठान्तरम्। २८. वां इति ख, वौं इति ग पुस्तके, वौं इति ग पुस्तके। २९. औं इति पाठान्तरम्।

ॐ ऐं ॠं नम:८९। ॐ ऐं रूं नम:९०।
ॐ ऐं क्लीं नम:९१। ॐ ऐं दुं नम:९२।
ॐ ऐं ह्रीं नम:९३। ॐ ऐं गूं[३०] नम:९४।
ॐ ऐं लां नम:९५। ॐ ऐं ह्रां नम:९६।
ॐ ऐं गं नम:९७। ॐ ऐं ऐं नम:९८।
ॐ ऐं श्रौं नम:९९। ॐ ऐं जूं नम:१००।

एवं स्तुता तदा देवी तामसी तत्र वेधसा।।८९।।
विष्णो: प्रबोधनार्थाय निहन्तुं मधुकैटभौ।
नेत्रास्यनासिकाबाहुहृदयेभ्यस्तथोरस:।।९०।।
निर्गम्य दर्शने तस्थौ ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मन: ।
उत्तस्थौ च जगन्नाथस्तया मुक्तो जनार्दन:।।९१।।
एकार्णवेऽहिशर्यनात्तत: स ददृशे च तौ।
मधुकैटभौ दुरात्मानावतिवीर्यपराक्रमौ।।९२।।
क्रोधरक्तेक्षणावत्तुं ब्रह्माणं जनितोद्यमौ।
समुत्थाय ततस्ताभ्यां युयुधे भगवान् हरि:।।९३।।
पञ्चवर्षसहस्राणि बाहुप्रहरणो विभु:।
तावप्यतिबलोन्मत्तौ महामायाविमोहितौ।।९४।।
उक्तवन्तौ वरोऽस्मत्तो व्रियतामिति केशवम्।।९५।।

श्रीभगवानुवाच।।९६।।

भवेतामद्य मे तुष्टौ मम वध्यावुभावपि।।९७।।
किमन्येन वरेणात्र एतावद्धि वृतं मम।।९८।।

ऋषिरुवाच।।९९।।

वञ्चिताभ्यामिति तदा सर्वमापोमयं जगत्।। १००।।

---

३०. गं इति इति ख पुस्तके।

ॐ ऐं डें नमः१०१। ॐ ऐं श्रौं नमः१०२।
ॐ ऐं छां*[१] नमः१०३। ॐ ऐं क्लीं*[२] नमः१०४।

'ॐ श्रीं क्लीं ह्रीं ह्रीं फट् स्वाहा'*

इति प्रथमोध्याय:

विलोक्य ताभ्यां गदितो भगवान् कमलेक्षणः।
आवां जहि न यत्रोर्वी सलिलेन परिप्लुता।।१०१।।

ऋषिरुवाच।।१०२।।

तथेत्युक्त्वा भगवता शङ्खचक्रगदाभृता।
कृत्वा चक्रेण वै च्छिन्ने जघने शिरसी तयोः।।१०३।।
एवमेषा समुत्पन्ना ब्रह्मणा संस्तुता स्वयम्।
प्रभावमस्या देव्यास्तु भूयः शृणु वदामि ते।ऐं ॐ।।१०४।।

ॐ अम्बे अम्बिके अम्बालिके न मानयति कश्चन। ससस्त्यश्वकः सुभद्रिका कांपीलवासिनीं नमः ।। ॐ साङ्गायै सपरिवारायै सवाहनायै सर्वायुधायै वाग्भवबीजाधिष्ठात्र्यै महाकाल्यै महाहुतिमर्पयामि नमः स्वाहा।**

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
मधुकैटभवधो नाम प्रथमोऽध्यायः।

*[१] छ्रां इति ग पुस्तके। * क्रीं, ह्रीं, श्रीं इति ग पुस्तके।

* हवनमंत्र। ** प्रथम अध्याय में **'वाग्भवबीजाधिष्ठात्र्यै महाकाल्यै'**, द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ में **'हल्लेखाबीजाधिष्ठात्र्यै महालक्ष्म्यै'** तथा पंचम से त्रयोदश अध्यायों में, **'कामबीजाधिष्ठात्र्यै'** का उच्चारण करते हुए हवन किया जाना चाहिये।

अथ द्वितीयोऽध्यायः

विनियोगः

ॐ मध्यमचरित्रस्य विष्णु ऋषिः, महालक्ष्मी देवता, उष्णिक्छन्दः, शाकम्भरी शक्तिः, दुर्गा बीजं, वायुस्तत्त्वं, यजुर्वेदः स्वरूपं, श्री महालक्ष्मीप्रीत्यर्थे मध्यमचरित्रजपे (पाठे) विनियोगः।

ध्यानम्

ॐ अक्षस्रक्परशुं गदेषुकुलिशं पद्मं धनुष्कुण्डिकां
दण्डं शक्तिमसिं च चर्म जलजं घण्टां सुराभाजनम्।
शूलं पाशसुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रसन्नाननां
सेवे सैरिभमर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम्।।

ॐ ऐं श्रौं नमः१। ॐ ऐं श्रीं नमः२।
ॐ ऐं ह्सूं[1] नमः३। ॐ ऐं ह्रौं[2] नमः४।

'ॐ ऋषिरुवाच ।।१।।'

देवासुरमभूद्युद्धं पूर्णमब्दशतं पुरा।
महिषेऽसुराणामधिपे देवानां च पुरन्दरे।।२।।
तत्रासुरैर्महावीर्यैर्देवसैन्यं पराजितम्।
जित्वा च सकलान् देवानिन्द्रोऽभून्महिषासुरः।।३।।
ततः पराजिता देवाः पद्मयोनिं प्रजापतिम्।
पुरस्कृत्य गतास्तत्र यत्रेशगरुडध्वजौ।।४।।

---

१. स्रं इति पाठान्तरम्। २. ह्रौं इति पाठान्तरम्।

ॐ ऐं ह्रीं[3] नमः५। ॐ ऐं अं नमः६।
ॐ ऐं क्लीं नमः७। ॐ ऐं चां नमः८।
ॐ ऐं मुं नमः९। ॐ ऐं डां नमः१०।
ॐ ऐं यैं नमः११। ॐ ऐं विं नमः१२।
ॐ ऐं च्चें नमः१३। ॐ ऐं ईं नमः१४।

यथावृत्तं तयोस्तद्वन्महिषासुरचेष्टितम्।
त्रिदशाः कथयामासुर्देवाभिभवविस्तरम्॥५॥
सूर्येन्द्राग्न्यनिलेन्दूनां यमस्य वरुणस्य च।
अन्येषां चाधिकारान् स स्वयमेवाधिष्ठिति॥६॥
स्वर्गान्निराकृताः सर्वे तेन देवगणा भुवि।
विचरन्ति यथा मर्त्या महिषेण दुरात्मना॥७॥
एतद्वः कथितं सर्वममरारिविचेष्टितम्।
शरणं वः प्रपन्नाः स्मो वधस्तस्य विचिन्त्यताम्॥८॥
इत्थं निशम्य देवानां वचांसि मधुसूदनः।
चकार कोपं शम्भुश्च भ्रुकुटीकुटिलाननौ॥९॥
ततोऽतिकोपपूर्णस्य चक्रिणो वदनात्ततः।
निश्चक्राम महत्तेजो ब्रह्मणः शङ्करस्य च॥१०॥
अन्येषां चैव देवानां शक्रादीनां शरीरतः।
निर्गतं सुमहत्तेजस्तच्चैक्यं समगच्छत॥११॥
अतीव तेजसः कूटं ज्वलन्तमिव पर्वतम्।
ददृशुस्ते सुरास्तत्र ज्वालाव्याप्तदिगन्तरम्॥१२॥
अतुलं तत्र तत्तेजः सर्वदेवशरीरजम्।
एकस्थं तदभून्नारी व्याप्तलोकत्रयं त्विषा॥१३॥
यदभूच्छाम्भवं तेजस्तेनाजायत तन्मुखम्।
याम्येन चाभवन् केशा बाहवो विष्णुतेजसा॥१४॥

३. ह्रौं इति पाठान्तरम्।

ॐ ऐं सौं नमः१५। ॐ ऐं गं[४] नमः१६।
ॐ ऐं त्रौं नमः१७। ॐ ऐं लूं नमः१८।
ॐ ऐं वं नमः१९। ॐ ऐं ह्रां[५] नमः२०।
ॐ ऐं क्रीं* नमः२१। ॐ ऐं सौं नमः२२।
ॐ ऐं यं नमः२३। ॐ ऐं ऐं नमः२४।

सौम्येन स्तनयोर्युग्मं मध्यं चैन्द्रेण चाभवत्।
वारुणेन च जङ्घोरू नितम्बस्तेजसा भुवः।।१५।।
ब्रह्मणस्तेजसा पादौ तदङ्गुल्योऽर्कतेजसा।
वसूनां च कराङ्गुल्यः कौबेरेण च नासिका।।१६।।
तस्यास्तु दन्ताः सम्भूताः प्राजापत्येन तेजसा
नयनत्रितयं जज्ञे तथा पावकतेजसा।।१७।।
भ्रुवौ च संध्ययोस्तेजः श्रवणावनिलस्य च।
अन्येषां चैव देवानां सम्भवस्तेजसां शिवा।।१८।।
ततः समस्तदेवानां तेजोराशिसमुद्भवाम्।
तां विलोक्य मुदं प्रापुरमरा महिषार्दिताः।।१९।।
शूलं शूलाद्विनिष्कृष्य ददौ तस्यै पिनाकधृक्।
चक्रं च दत्तवान् कृष्णः समुत्पाद्य स्वचक्रतः।।२०।।
शङ्खं च वरुणः शक्तिं ददौ तस्यै हुताशनः।
मारुतो दत्तवांश्चापं बाणपूर्णे तथेषुधी।।२१।।
वज्रमिन्द्रः समुत्पाद्य कुलिशादमराधिपः।
ददौ तस्यै सहस्राक्षो घण्टामैरावताद् गजात्।।२२।।
कालदण्डाद्यमो दण्डं पाशं चाम्बुपति र्ददौ।
प्रजापतिश्चाक्षमालां ददौ ब्रह्मा कमण्डलुम्।।२३।।
समस्तरोमकूपेषु निजरश्मीन् दिवाकरः।
कालश्च दत्तवान् खड्गं तस्याश्चर्म च निर्मलम्।।२४।।

४. व्रां इति ख–ग पुस्तके। ५. वं इति ग पुस्तके, हुं इति पाठान्तरम्।
* ह्रां इति ग पुस्तके।

ॐ ऐं मूं[६] नमः२५। ॐ ऐं सं[७] नमः२६।
ॐ ऐं हं नमः२७। ॐ ऐं सं नमः२८।
ॐ ऐं सों[८] नमः२९। ॐ ऐं शं नमः३०।
ॐ ऐं हं नमः३१। ॐ ऐं ह्रौं नमः३२।
ॐ ऐं म्लीं नमः३३। ॐ ऐं यूं[९] नमः३४।

क्षीरोदश्चामलं हारमजरे च तथाम्बरे।
चूडामणिं तथा दिव्यं कुण्डले कटकानि च॥२५॥
अर्धचन्द्रं तथा शुभ्रं केयूरान् सर्वबाहुषु।
नूपुरौ विमलौ तद्वद् ग्रैवेयकमनुत्तमम्॥२६॥
अङ्गुलीयकरत्नानि समस्तास्वङ्गुलीषु च।
विश्वकर्मा ददौ तस्यै परशुं चातिनिर्मलम्॥२७॥
अस्त्राण्यनेकरूपाणि तथाभेद्यं च दंशनम्।
अम्लानपङ्कजां मालां शिरस्युरसि चापराम्॥२८॥
अददज्जलधिस्तस्यै पङ्कजं चातिशोभनम्।
हिमवान् वाहनं सिंहं रत्नानि विविधानि च॥२९॥
ददावशून्यं सुरया पानपात्रं धनाधिपः।
शेषश्च सर्वनागेशो महामणिविभूषितम्॥३०॥
नागहारं ददौ तस्यै धत्ते यः पृथिवीमिमाम्।
अन्यैरपि सुरैर्देवी भूषणैरायुधैस्तथा॥३१॥
सम्मानिता ननादोच्चैः साट्टहासं मुहुर्मुहुः।
तस्या नादेन घोरेण कृत्स्नमापूरितं नभः॥३२॥
अमायतातिमहता प्रतिशब्दो महानभूत्।
चुक्षुभुः सकला लोकाः समुद्राश्च चकम्पिरे॥३३॥
चचाल वसुधा चेलुः सकलाश्च महीधराः।
जयेति देवाश्च मुदा तामूचुः सिंहवाहिनीम्॥३४॥

६. सं इति पाठान्तरम्। ७. सः इति ख—ग पुस्तके।
८. सें इति ख पुस्तके, सौं इति पाठान्तरम्। ९. यं इति ख पुस्तके।

ॐ ऐं त्रूं नमः३५। ॐ ऐं स्त्रीं[10] नमः३६।
ॐ ऐं आं नमः३७। ॐ ऐं प्रें[11] नमः३८।
ॐ ऐं शं नमः३९। ॐ ऐं ह्रां नमः४०।
ॐ ऐं स्मूं[12] नमः४१। ॐ ऐं ऊं[13] नमः४२।
ॐ ऐं गूं[14] नमः४३। ॐ ऐं व्यं[15] नमः४४।

तुष्टुवुर्मुनयश्चैनां भक्तिनम्रात्ममूर्तयः।
दृष्ट्वा समस्तं संक्षुब्धं त्रैलोक्यममरारयः।।३५।।
संनद्धाखिलसैन्यास्ते समुत्तस्थुरुदायुधाः।
आः किमेतदिति क्रोधादाभाष्य महिषासुरः।।३६।।
अभ्यधावत तं शब्दमशेषैरसुरैर्वृतः।
स ददर्श ततो देवीं व्याप्तलोकत्रयां त्विषा।।३७।।
पादाक्रान्त्या नतभुवं किरीटोल्लिखिताम्बराम्।
क्षोभिताशेषपातालां धनुर्ज्यानिःस्वनेन ताम्।।३८।।
दिशो भुजसहस्रेण समन्ताद् व्याप्य संस्थिताम्।
ततः प्रववृते युद्धं तया देव्या सुरद्विषाम्।।३९।।
शस्त्रास्त्रैर्बहुधा मुक्तैरादीपितदिगन्तरम्।
महिषासुरसेनानीश्चिक्षुराख्यो महासुरः।।४०।।
युयुधे चामरश्चान्यैश्चतुरङ्गबलान्वितः।
रथानामयुतैः षड्भिरुदग्राख्यो महासुरः।।४१।।
अयुध्यतायुतानां च सहस्रेण महाहनुः।
पञ्चाशद्भिश्च नियुतैरसिलोमा महासुरः।।४२।।
अयुतानां शतैः षड्भिर्बाष्कलो युयुधे रणे।
गजवाजिसहस्रौघैरनेकैः परिवारितः।।४३।।
वृतो रथानां कोट्या च युद्धे तस्मिन्नयुध्यत।
बिडालाख्योऽयुतानां च पञ्चाशद्भिरथायुतैः।।४४।।

---

१०. स्त्रीं इति ख पुस्तके। ११. प्रैं इति पाठान्तरम्। १२. स्रूं इति पाठान्तरम्।
१३. हुं इति पाठान्तरम्। १४. गं इति ख पुस्तके।
१५. श्रूं इति ग पुस्तके, स्रूं इति पाठान्तरम्।

ॐ ऐं ह्[१६] नमः४५। ॐ ऐं भैं[१७] नमः४६।
ॐ ऐं ह्रां नमः४७। ॐ ऐं क्रूं नमः४८।
ॐ ऐं मूं[१८] नमः४९। ॐ ऐं ल्रीं नमः५०।
ॐ ऐं श्रां नमः५१। ॐ ऐं द्रूं नमः५२।
ॐ ऐं ह्रूं[१९] नमः५३। ॐ ऐं ह्सौं* नमः५४।

युयुधुः संयुगे तत्र रथानां परिवारितः।
अन्ये च तत्रायुतशो रथनागहयैर्वृताः॥४५॥
युयुधः संयुगे देव्या सह तत्र महासुराः।
कोटिकोटिसहस्रैस्तु रथानां दन्तिनां तथा॥४६॥
हयानां च वृतो युद्धे तत्राभून्महिषासुरः।
तोमरैर्भिन्दिपालैश्च शक्तिभिर्मुसलैस्तथा॥४७॥
युयुधुः संयुगे देव्या खड्गैः परशुपट्टिशैः।
केचिच्च चिक्षिपुः शक्तिः केचित्पाशांस्तथापरे॥४८॥
देवीं खड्गप्रहारैस्तु ते तां हन्तुं प्रचक्रमुः।
सापि देवी ततस्तानि शस्त्राण्यस्त्राणि चण्डिका॥४९॥
लीलयैव प्रचिच्छेद निजशस्त्रास्त्रवर्षिणी।
अनायस्ताननना देवी स्तूयमाना सुरर्षिभिः॥५०॥
मुमोचासुरदेहेषु शस्त्राण्यस्त्राणि चेश्वरी ।
सोऽपि क्रुद्धो धुतसटो देव्या वाहनकेसरी॥५१॥
चचारासुरसैन्येषु वनेष्विव हुताशनः।
निःश्वासान् मुमुचे यांश्च युध्यमाना रणेऽम्बिका॥५२॥
त एव सद्यः सम्भूता गणाः शतसहस्रशः।
युयुधुस्ते परशुभिर्भिन्दिपालासिपट्टिशैः॥५३॥
नाशयन्तोऽसुरगणान् देवीशक्त्युपबृंहिताः।
अवादयन्त पटहान् गणाः शङ्खांस्तथापरे॥५४॥

१६. ह्रूं इति ख–ग पुस्तके। १७. भं इति ख पुस्तके। १८. सूं इति पाठान्तरम्।
१९. द्रूं इति ख–ग पुस्तके। * ह्म्लौं इति ग पुस्तके।

ॐ ऐं क्रां नमः५५। ॐ ऐं स्हौं नमः५६।
ॐ ऐं म्लूं नमः५७। ॐ ऐं श्रीं नमः५८।
ॐ ऐं गैं नमः५९। ॐ ऐं क्रीं[२०] नमः६०।
ॐ ऐं त्रीं नमः६१। ॐ ऐं क्सीं[२१] नमः६२।
ॐ ऐं फ्रों[२२] नमः६३। ॐ ऐं फ्रों[२३] नमः६४।

मृदङ्गांश्च तथैवान्ये तस्मिन् युद्धमहोत्सवे।
ततो देवी त्रिशूलेन गदया शक्तिवृष्टिभिः॥५५॥
खड्गादिभिश्च शतशो निजघान महासुरान्।
पातयामास चैवान्यान् घण्टास्वनविमोहितान्॥५६॥
असुरान् भुवि पाशेन बद्ध्वा चान्यानकर्षयत्।
केचिद् द्विधा कृतास्तीक्ष्णैः खड्गपातैस्तथापरे॥५७॥
विपोथिता निपातेन गदया भुवि शेरते।
वेमुश्च केचिद्रुधिरं मुसलेन भृशं हताः॥५८॥
केचिन्निपतिता भूमौ भिन्नाः शूलेन वक्षसि।
निरन्तराः शरौघेण कृताः केचिद्रणाजिरे॥५९॥
सेनानुकारिणः प्राणान् मुमुचुस्त्रिदशार्दनाः।
केषांचिद् बाहवश्छिन्नाश्छिन्नग्रीवास्तथापरे॥६०॥
शिरांसि पेतुरन्येषामन्ये मध्ये विदारिताः।
विच्छिन्नजङ्घास्त्वपरे पेतुरुर्व्यां महासुराः॥६१॥
एकबाह्वक्षिचरणाः केचिद्देव्या द्विधा कृताः।
छिन्नेऽपि चान्ये शिरसि पतिताः पुनरुत्थिताः॥६२॥
कबन्धा युयुधुर्देव्या गृहीतपरमायुधाः।
ननृतुश्चापरे तत्र युद्धे तूर्यलयाश्रिताः॥६३॥
कबन्धाश्छिन्नशिरसः खड्गशक्त्यृष्टिपाणयः।
तिष्ठ तिष्ठेति भाषन्तो देवीमन्ये महासुराः॥६४॥

---

२०. क्रं इति ख, क्रूं इति ग पुस्तके। २१. क्सीं इति ख-ग पुस्तके।
२२. कं इति ख-ग पुस्तके। २३. फ्रौं इति ग पुस्तके, फ्रां इति पाठान्तरम्।

ॐ ऐं ह्रीं नमः६५। ॐ ऐं शां नमः६६।
ॐ ऐं क्ष्म्रीं नमः६७। ॐ ऐं रों[24] नमः६८।
ॐ ऐं ड्रूं[25] नमः६९।

'ॐ ऐं क्रीं क्रां सौं सः फट् स्वाहा'

इति द्वितीयोऽध्यायः

पातितै रथनागाश्वैरसुरैश्च वसुन्धरा।
अगम्या साभवत्तत्र यत्राभूत्स महारणः॥६५॥
शोणितौघा महानद्यः सद्यस्तत्र प्रसुस्रुवुः।
मध्ये चासुरसैन्यस्य वारणासुरवाजिनाम्॥६६॥
क्षणेन तन्महासैन्यमसुराणां तथाम्बिका।
निन्ये क्षयं यथा वह्निस्तृणदारुमहाचयम्॥६७॥
स च सिंहो महानादमुत्सृजन्धुतकेसरः।
शरीरेभ्योऽमरारीणामसूनिव विचिन्वति॥६८॥
देव्या गणैश्च तैस्तत्र कृतं युद्धं महासुरैः।
यथैषां तुतुषुर्देवाः पुष्पवृष्टिमुचो दिवि॥ॐ॥६९॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
महिषासुरसैन्यवधो नाम द्वितीयोऽध्यायः॥२॥

卐

---

२४. रीं इति पाठान्तरम्। २५. ड्रुं इति ख, ह्रुं इति ग पुस्तके। ऊं इति पाठान्तरम्।

अथ तृतीयोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐ उद्यद्भानुसहस्रकान्तिमरुणक्षौमां शिरोमालिकां
रक्तालिप्तपयोधरां जपवटीं विद्यामभीतिं वरम्।
हस्ताब्जैर्दधतीं त्रिनेत्रविलसद्वक्त्रारविन्दश्रियं
देवीं बद्धहिमांशुरत्नमुकुटां वन्देऽरविन्दस्थिताम्।।

ॐ ऐं श्रौं[1] नमः१। ॐ ऐं क्लीं नमः२।
ॐ ऐं सां[2] नमः३। ॐ ऐं त्रों[3] नमः४।
ॐ ऐं प्रूं नमः५। ॐ ऐं म्लीं[4] नमः६।

ॐ ऋषिरुवाच ।।१।।

निहन्यमानं तत्सैन्यमवलोक्य महासुरः।
सेनानीश्चिक्षुरः कोपाद्ययौ योद्धुमथाम्बिकाम्।।२।।
स देवीं शरवर्षेण ववर्ष समरेऽसुरः।
यथा मेरुगिरेः शृङ्गं तोयवर्षेण तोयदः।।३।।
तस्यच्छित्त्वा ततो देवी लीलयैव शरोत्करान् ।
जघान तुरगान् बाणै र्यन्तारं चैव वाजिनाम्।।४।।
चिच्छेद च धनुः सद्यो ध्वजं चातिसमुच्छ्रितम् ।
विव्याध चैव गात्रेषु छिन्नधन्वानमाशुगैः।।५।।
सच्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः।
अभ्यधावत तां देवीं खड्गचर्मधरोऽसुरः।।६।।

---

१. श्रों इति ख पुस्तके, श्रां इति पाठान्तरम्। २. म्रां इति ख पुस्तके।
३. त्रौं इति पाठान्तरम्। ४. ग्लौं इति ख—ग पुस्तके।

ॐ ऐं क्रौं नमः७। ॐ ऐं क्वीं नमः८।
ॐ ऐं स्लीं नमः९। ॐ ऐं ह्रीं नमः१०।
ॐ ऐं हौं[५] नमः११। ॐ ऐं श्रां* नमः१२।
ॐ ऐं ग्रों[६] नमः१३। ॐ ऐं क्रूं नमः१४।
ॐ ऐं क्रीं नमः१५। ॐ ऐं यां नमः१६।

सिंहमाहत्य खड्गेन तीक्ष्णधारेण मूर्धनि।
आजघान भुजे सव्ये देवीमप्यतिवेगवान्॥७॥
तस्याः खड्गो भुजं प्राप्य पफाल नृपनन्दन!
ततो जग्राह शूलं स कोपादरुणलोचनः॥८॥
चिक्षेप च ततस्तत्तु भद्रकाल्यां महासुरः।
जाज्वल्यमानं तेजोभी रविबिम्बमिवाम्बरात्॥९॥
दृष्ट्वा तदापतच्छूलं देवी शूलममुञ्चत।
तच्छूलं शतधा तेन नीतं स च महासुरः॥१०॥
हते तस्मिन्महावीर्ये महिषस्य चमूपतौ।
आजगाम गजारूढश्चामरस्त्रिदशार्दनः॥११॥
सोऽपि शक्तिं मुमोचाथ देव्यास्तामम्बिका द्रुतम्।
हुंकाराभिहतां भूमौ पातयामास निष्प्रभाम्॥१२॥
भग्नां शक्तिं निपतितां दृष्ट्वा क्रोधसमन्वितः।
चिक्षेप चामरः शूलं बाणैस्तदपि साच्छिनत्॥१३॥
ततः सिंहः समुत्पत्य गजकुम्भान्तरे स्थितः।
बाहुयुद्धेन युयुधे तेनोच्चैस्त्रिदशारिणा॥१४॥
युद्ध्यमानौ ततस्तौ तु तस्मान्नागान्महीं गतौ।
युयुधातेऽतिसंरब्धौ प्रहारैरतिदारुणैः॥१५॥
ततो वेगात् खमुत्पत्य निपत्य च मृगारिणा।
करप्रहारेण शिरश्चामरस्य पृथक्कृतम्॥१६॥

---

५. ह्रौं इति पाठान्तरम्। * ख पुस्तके बीजमंत्रं नास्ति। ६. ग्रीं इति ख पुस्तके।

ॐ ऐं द्लूं नम:१७। ॐ ऐं द्रूं नम:१८।
ॐ ऐं क्षं नम:१९। ॐ ऐं ओं नम:२०।
ॐ ऐं क्रौं[७] नम:२१। ॐ ऐं क्ष्म्क्ल्रीं नम:२२।
ॐ ऐं वां नम:२३। ॐ ऐं श्रूं नम:२४।
ॐ ऐं ब्लूं[८] नम:२५। ॐ ऐं ल्रीं[९] नम:२६।

उदग्रश्च रणे देव्या शिलावृक्षादिभिर्हतः।
दन्तमुष्टितलैश्चैव करालश्च निपातितः।।१७।।
देवी क्रुद्धा गदापातैश्चूर्णयामास चोद्धतम्।
वाष्कलं भिन्दिपालेन बाणैस्ताम्रं तथान्धकम्।।१८।।
उग्रास्यमुग्रवीर्यं च तथैव च महाहनुम्।
त्रिनेत्रा च त्रिशूलेन जघान परमेश्वरी।।१९।।
विडालस्यासिना कायात्पातयामास वै शिरः।
दुर्धरं दुर्मुखं चोभौ शरैर्निन्ये यमक्षयम्।।२०।।
एवं संक्षीयमाणे तु स्वसैन्ये महिषासुरः।
माहिषेण स्वरूपेण त्रासयामास तान् गणान्।।२१।।
कांश्चित्तुण्डप्रहारेण खुरक्षेपैस्तथापरान्।
लाङ्गूलताडितांश्चान्याञ्छृङ्गाभ्यां च विदारितान्।।२२।।
वेगेन कांश्चिदपरान्नादेन भ्रमणेन च।
निःश्वासपवनेनान्यान् पातयामास भूतले।।२३।।
निपात्य प्रमथानीकमभ्यधावत सोऽसुरः।
सिंहं हन्तुं महादेव्याः कोपं चक्रे ततोऽम्बिका।।२४।।
सोऽपि कोपान्महावीर्यः खुरक्षुण्णमहीतलः।
शृङ्गाभ्यां पर्वतानुच्चांश्चिक्षेप च ननाद च।।२५।।
वेगभ्रमणविक्षुण्णा मही तस्य व्यशीर्यत।
लाङ्गूलेनाहतश्चाब्धिः प्लावयामास सर्वतः।।२६।।

---

७. क्रां इति पाठान्तरम्। ८. ग्लूं इति ख–ग पुस्तके। ९. ल्रां इति ख पुस्तके।

ॐ ऐं प्रें नमः२७। ॐ ऐं हू[१०] नमः२८।
ॐ ऐं ह्रौं नमः२९। ॐ ऐं दें नमः३०।
ॐ ऐं नूं नमः३१। ॐ ऐं आं[११] नमः३२।
ॐ ऐं फ्रां[१२] नमः३३। ॐ ऐं प्रीं[१३] नमः३४।
ॐ ऐं दूं[१४] नमः३५। ॐ ऐं फ्रीं[१५] नमः३६।

धुतशृङ्गविभिन्नाश्च खण्डं खण्डं ययुर्घनाः ।
श्वासानिलास्ताः शतशो निपेतुर्नभसोऽचलाः॥२७॥
इति क्रोधसमाध्मातमापतन्तं महासुरम्।
दृष्ट्वा सा चण्डिका कोपं तद्वधाय तदाकरोत्॥२८॥
सा क्षिप्त्वा तस्य वै पाशं तं बबन्ध महासुरम्।
तत्याज माहिषं रूपं सोऽपि बद्धो महामृधे॥२९॥
ततः सिंहोऽभवत्सद्यो यावत्तस्याम्बिका शिरः।
छिनत्ति तावत्पुरुषः खड्गपाणिरदृश्यत॥३०॥
तत एवाशु पुरुषं देवी चिच्छेद सायकैः।
तं खड्गचर्मणा सार्द्धं ततः सोऽभून्महागजः॥३१॥
करेण च महासिंहं तं चकर्ष जगर्ज च।
कर्षतस्तु करं देवी खड्गेन निरकृन्तत॥३२॥
ततो महासुरो भूयो माहिषं वपुरास्थितः।
तथैव क्षोभयामास त्रैलोक्यं सचराचरम्॥३३॥
ततः क्रुद्धा जगन्माता चण्डिका पानमुत्तमम्।
पपौ पुनः पुनश्चैव जहासारुणलोचना॥३४॥
ननर्द चासुरः सोऽपि बलवीर्यमदोद्धतः।
विषाणाभ्यां च चिक्षेप चण्डिकां प्रति भूधरान्॥३५॥
सा च तान् प्रहितांस्तेन चूर्णयन्ती शरोत्करैः।
उवाच तं मदोद्धूतमुखरागाकुलाक्षरम्॥३६॥

१०. हुं इति ख पुस्तके। ११. श्रां इति पाठान्तरम्। १२. फ्रों इति पाठान्तरम्।
१३. प्रां इति ख पुस्तके। १४. दं इति ख–ग पुस्तके, दूं इति पाठान्तरम्।
१५. फ्रां इति ख पुस्तके।

ॐ ऐं ह्रीं[१६] नमः३७। ॐ ऐं गूं नमः३८।
ॐ ऐं श्रौं नमः३९। ॐ ऐं सां नमः४०।
ॐ ऐं श्रीं नमः४१। ॐ ऐं जुं नमः४२।
ॐ ऐं हं नमः४३। ॐ ऐं सं नमः४४।

'ॐ ह्रीं श्रीं कुं फट् स्वाहा'

इति तृतीयोऽध्यायः

देव्युवाच ॥३७॥

गर्ज गर्ज क्षणं मूढ मधु यावत्पिबाम्यहम्।
मया त्वयि हतेऽत्रैव गर्जिष्यन्त्याशु देवताः॥३८॥

ऋषिरुवाच ॥३९॥

एवमुक्त्वा समुत्पत्य साऽऽरूढा तं महासुरम् ।
पादेनाक्रम्य कण्ठे च शूलेनैनमताडयत्॥४०॥
ततः सोऽपि पदाऽऽक्रान्तस्तया निजमुखात्ततः।
अर्धनिष्क्रान्त एवासीद् देव्या वीर्येण संवृतः॥४१॥
अर्धनिष्क्रान्त एवासौ युध्यमानो महासुरः।
तया महासिना देव्या शिरश्छित्त्वा निपातितः॥४२॥
ततो हाहाकृतं सर्वं दैत्यसैन्यं ननाश तत्।
प्रहर्षं च परं जग्मुः सकला देवतागणाः॥४३॥
तुष्टुवुस्तां सुरा देवीं सह दिव्यैर्महर्षिभिः
जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः॥४४॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
महिषासुरवधो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

卐

---

१६. ह्रां इति ख पुस्तके।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐ कालाभ्राभां कटाक्षैररिकुलभयदां मौलिबद्धेन्दुरेखां
शङ्खं चक्रं कृपाणं त्रिशिखमपि करैरुद्वहन्तीं त्रिनेत्राम्।
सिंहस्कन्धाधिरूढां त्रिभुवनमखिलं तेजसा पूरयन्तीं।
ध्यायेद् दुर्गां जयाख्यां त्रिदशपरिवृतां सेवितां सिद्धिकामैः।।

ॐ ऐं श्रौं नमः१। ॐ ऐं सौं नमः२।
ॐ ऐं दों[1] नमः३। ॐ ऐं प्रें[2] नमः४।

ॐ ऋषिरुवाच ।।१।।

शक्रादयः सुरगणा निहतेऽतिवीर्ये
तस्मिन्दुरात्मनि सुरारिबले च देव्या।
तां तुष्टुवुः प्रणतिनम्रशिरोधरांसा
वाग्भिः प्रहर्षपुलकोद्गमचारुदेहाः।।२।।
देव्या यया ततमिदं जगदात्मशक्त्या
निश्शेषदेवगणशक्तिसमूहमूर्त्या
तामम्बिकामखिलदेवमहर्षिपूज्यां
भक्त्या नताः स्म विदधातु शुभानि सा नः।।३।।
यस्याः प्रभावमतुलं भगवाननन्तो
ब्रह्मा हरश्च न हि वक्तुमलं बलं च।
सा चण्डिकाखिलजगत्परिपालनाय
नाशाय चाशुभभयस्य मतिं करोतु।।४।।

१. द्रीं इति ख पुस्तके। २. प्रैं इति पाठान्तरम्।

ॐ ऐं यां नमः५। ॐ ऐं रूं[3] नमः६।
ॐ ऐं भं[4] नमः७। ॐ ऐं सूं नमः८।
ॐ ऐं श्रां नमः९। ॐ ऐं औं[5] नमः१०।

या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः
पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः।
श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा
तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम्॥५॥
किं वर्णयाम तव रूपमचिन्त्यमेतत्
किं चातिवीर्यमसुरक्षयकारि भूरि।
किं चाहवेषु चरितानि तवाद्भुतानि
सर्वेषु देव्यसुरदेवगणादिकेषु॥६॥
हेतुः समस्तजगतां त्रिगुणापि दोषैर्न–
ज्ञायसे हरिहरादिभिरप्यपारा।
सर्वाश्रयाखिलमिदं जगदंशभूत–
मव्याकृता हि परमा प्रकृतिस्त्वमाद्या॥७॥
यस्याः समस्तसुरता समुदीरणेन
तृप्तिं प्रयाति सकलेषु मखेषु देवि।
स्वाहासि वै पितृगणस्य च तृप्तिहेतु–
रुच्चार्यसे त्वमत एव जनैः स्वधा च॥८॥
या मुक्तिहेतुरविचिन्त्यमहाव्रता त्व–
मभ्यस्यसे सुनियतेन्द्रियतत्त्वसारैः।
मोक्षार्थिभि र्मुनिभिरस्तसमस्तदोषै–
र्विद्यासि सा भगवती परमा हि देवि॥९॥
शब्दात्मिका सुविमलर्ग्यजुषां निधान –
मुद्गीथरम्यपदपाठवतां च साम्नाम्।
देवी त्रयी भगवती भवभावनाय
वार्त्ता च सर्वजगतां परमार्त्तिहन्त्री॥१०॥

---

३. कं इति पाठान्तरम्। ४. में इति पाठान्तरम्।
५. ओं इति ख–ग पुस्तके, क्लीं इति पाठान्तरम्।

ॐ ऐं लूं नमः११। ॐ ऐं डूं नमः१२।
ॐ ऐं जूं[६] नमः१३। ॐ ऐं धूं नमः१४।
ॐ ऐं त्रें नमः१५। ॐ ऐं ह्रीं[७] नमः१६।

मेधासि देवि विदिताखिलशास्त्रसारा
दुर्गासि दुर्गभवसागरनौरसङ्गा।
श्रीः कैटभारिहृदयैककृताधिवासा
गौरी त्वमेव शशिमौलिकृतप्रतिष्ठा।।११।।
ईषत्सहासममलं परिपूर्णचन्द्र –
बिम्बानुकारि कनकोत्तमकान्तिकान्तम्।
अत्यद्भुतं प्रहृतमात्तरुषा तथापि
वक्त्रं विलोक्य सहसा महिषासुरेण।।१२।।
दृष्ट्वा तु देवि कुपितं भ्रुकुटीकराल–
मुद्यच्छशाङ्कसदृशच्छवि यन्न सद्यः।
प्राणान्मुमोच महिषस्तदतीव चित्रं
कैर्जीव्यते हि कुपितान्तकदर्शनेन।।१३।।
देवि प्रसीद परमा भवती भवाय।
सद्यो विनाशयसि कोपवती कुलानि।
विज्ञातमेतदधुनैव यदस्तमेत–
न्नीतं बलं सुविपुलं महिषासुरस्य।।१४।।
ते सम्मता जनपदेषु धनानि तेषां
तेषां यशांसि न च सीदति धर्मवर्गः।
धन्यास्त एव निभृतात्मजभृत्यदारा
येषां सदाभ्युदयदा भवती प्रसन्ना।।१५।।
धर्म्याणि देवि सकलानि सदैव कर्मा–
ण्यत्यादृतः प्रतिदिनं सुकृती करोति।
स्वर्गं प्रयाति च ततो भवतीप्रसादा–
ल्लोकत्रयेऽपि फलदा ननु देवि तेन।।१६।।

६. जुं इति ख पुस्तके। ७. ह्रीं इति ख, श्रीं इति ग पुस्तके।

ॐ ऐं श्रीं*[१] नमः१७। ॐ ऐं ईं नमः१८।
ॐ ऐं ह्रां नमः१९। ॐ ऐं ह्रूं*[२] नमः२०।
ॐ ऐं क्लूं नमः२१। ॐ ऐं क्रां नमः२२।

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदाऽऽर्द्रचित्ता।।१७।।
एभिर्हतैर्जगदुपैति सुखं तथैते
कुर्वन्तु नाम नरकाय चिराय पापम्।
संग्राममृत्युमधिगम्य दिवं प्रयान्तु
मत्वेति नूनमहितान् विनिहंसि देवि।।१८।।
दृष्ट्वैव किं न भवती प्रकरोति भस्म
सर्वासुरानरिषु यत्प्रहिणोषि शस्त्रम्।
लोकान् प्रयान्तु रिपवोऽपि हि शस्त्रपूता
इत्थं मतिर्भवति तेष्वपि तेऽतिसाध्वी।।१९।।
खड्गप्रभानिकरविस्फुरणैस्तथोग्रैः
शूलाग्रकान्तिनिवहेन दृशोऽसुराणाम्।
यन्नागता विलयमंशुमदिन्दुखण्ड –
योग्याननं तव विलोकयतां तदेतत्।।२०।।
दुर्वृत्तवृत्तशमनं तव देवि शीलं
रूपं तथैतदविचिन्त्यमतुल्यमन्यैः।
वीर्यं च हन्तृ हृतदेवपराक्रमाणां
वैरिष्वपि प्रकटितैव दया त्वयेत्थम्।।२१।।
केनोपमा भवतु तेऽस्य पराक्रमस्य
रूपं च शत्रुभयकार्यतिहारि कुत्र।
चित्ते कृपा समरनिष्ठुरता च दृष्टा
त्वय्येव देवि वरदे भुवनत्रयेऽपि।।२२।।

*[१] ह्रीं इति ग पुस्तके। *[२] ह्रूं इति ग पुस्तके।

ॐ ऐं ल्लूं[८] नमः२३।	ॐ ऐं फ्रें नमः२४।
ॐ ऐं क्रीं नमः२५।	ॐ ऐं म्लूं नमः२६।
ॐ ऐं घ्रें[९] नमः२७।	ॐ ऐं श्रौं नमः२८।
ॐ ऐं ह्रौं नमः२९।	ॐ ऐं व्रीं नमः३०।
ॐ ऐं ह्रीं नमः३१।	ॐ ऐं त्रौं नमः३२।

त्रैलोक्यमेतदखिलं रिपुनाशनेन
त्रातं त्वया समरमूर्धनि तेऽपि हत्वा।
नीता दिवं रिपुगणा भयमप्यपास्त –
मस्माकमुन्मदसुरारिभवं नमस्ते ।।२३।।
शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके ।
घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिःस्वनेन च।।२४।।
प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे ।
भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि।।२५।।
सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते।
यानि चात्यर्थघोराणि तै रक्षास्मांस्तथा भुवम्।।२६।।
खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके।
करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः।।२७।।

ऋषिरुवाच ।।२८।।

एवं स्तुता सुरैर्दिव्यैः कुसुमैर्नन्दनोद्भवैः।
अर्चिता जगतां धात्री तथा गन्धानुलेपनैः।।२९।।
भक्त्या समस्तैस्त्रिदशैर्दिव्यैर्धूपैस्तु धूपिता।
प्राह प्रसादसुमुखी समस्तान् प्रणतान् सुरान्।।३०।।

देव्युवाच ।।३१।।

व्रियतां त्रिदशाः सर्वे यदस्मत्तोऽभिवाञ्छितम्।।३२।।

८. लूं इति पाठान्तरम्। ९. घ्नें इति ख, घ्रें इति ग पुस्तके, घ्नैं इति पाठान्तरम्।

ॐ ऐं हसौं[10] नमः३३। ॐ ऐं गीं नमः३४।
ॐ ऐं यूं नमः ३५। ॐ ऐं ह्रीं नमः ३६।
ॐ ऐं हूं[11] नमः३७। ॐ ऐं श्रौं नमः३८।
ॐ ऐं ओं नमः३९। ॐ ऐं अं नमः४०।
ॐ ऐं म्हौं* नमः४१। ॐ ऐं प्रीं नमः४२।
ॐ 'अं ह्रीं श्रीं हंसः फट् स्वाहा'

इति चतुर्थोऽध्यायः

देवा ऊचुः ॥३३॥

भगवत्या कृतं सर्वं न किंचिदवशिष्यते।
यदयं निहतः शत्रुरस्माकं महिषासुरः॥३४॥
यदि चापि वरो देयस्त्वयास्माकं महेश्वरि।
संस्मृता त्वं नो हिंसेथाः परमापदः॥३५॥
यश्च मर्त्यः स्तवैरेभिस्त्वां स्तोष्यत्यमलानने।
तस्य वित्तर्द्धिविभवैर्धनदारादिसम्पदाम्॥३६॥
वृद्धयेऽस्मत्प्रसन्ना त्वं भवेथाः सर्वदाम्बिके॥३७॥

ऋषिरुवाच ॥३८॥

इति प्रसादिता देवैर्जगतोऽर्थे तथाऽऽत्मनः।
तथेत्युक्त्वा भद्रकाली बभूवान्तर्हिता नृप॥३९॥
इत्येतत्कथितं भूप सम्भूता सा यथा पुरा।
देवी देवशरीरेभ्यो जगत्त्रयहितैषिणी॥४०॥
पुनश्च गौरीदेहात्सा समुद्भूता यथाभवत्।
वधाय दुष्टदैत्यानां तथा शुम्भनिशुम्भयोः॥४१॥
रक्षणाय च लोकानां देवानामुपकारिणी।
तच्छृणुष्व मयाऽऽख्यातं यथावत्कथयामि ते।ह्रीं ॐ॥४२॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
शक्रादिस्तुतिर्नाम चतुर्थोऽध्यायः॥४॥

---

१०. हल्लौं इति ख, ह्रौं इति ग पुस्तके। ११. हुं इति ख पुस्तके। * म्लौं इति ग पुस्तके।

अथ पंचमोऽध्यायः

विनियोगः

ॐ अस्य उत्तरचरित्रस्य रुद्र ऋषिः, महासरस्वती देवता, अनुष्टुप् छन्दः, भीमा शक्तिः, भ्रामरी बीजम्, सूर्यस्तत्त्वं, सामवेदः स्वरूपं, श्रीमहासरस्वतीप्रीत्यर्थे पाठे (जपे) विनियोगः।

ध्यानम्

ॐ घण्टाशूलहलानि शंखमुसले चक्रं धनुः सायकं
हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम्।
गौरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामाधारभूतां महा
पूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादिदैत्यार्दिनीम्।।

ॐ ऐं श्रीं नमः१। ॐ ऐं प्रीं नमः२।
ॐ ऐं आं[1] नमः३। ॐ ऐं ह्रीं नमः४।

ॐ क्लीं ऋषिरुवाच ।।१।।

पुरा शुम्भनिशुम्भाभ्यामसुराभ्यां शचीपतेः।
त्रैलोक्यं यज्ञभागाश्च हृता मदबलाश्रयात्।।२।।
तावेव सूर्यतां तद्वदधिकारं तथैन्दवम्।
कौबेरमथ याम्यं च चक्राते वरुणस्य च।।३।।
तावेव पवनर्द्धिं च चक्रतुर्वह्निकर्म च।
ततो देवा विनिर्धूता भ्रष्टराज्याः पराजिताः।।४।।

---

१. ओं इति ग पुस्तके, क्रीं इति पाठान्तरम्।

ॐ ऐं ल्रीं नमः५। ॐ ऐं त्रों नमः६।
ॐ ऐं क्रीं नमः७। ॐ ऐं ह्सौं नमः८।
ॐ ऐं ह्रीं नमः९। ॐ ऐं श्रीं नमः१०।
ॐ ऐं हूं[२] नमः११। ॐ ऐं क्लीं नमः१२।
ॐ ऐं रौं[३] नमः१३।

हताधिकारास्त्रिदशास्ताभ्यां सर्वे निराकृताः।
महासुराभ्यां तां देवीं संस्मरन्त्यपराजिताम्॥५॥

तयास्माकं वरो दत्तो यथाऽऽपत्सु स्मृताखिलाः।
भवतां नाशयिष्यामि तत्क्षणात्परमापदः॥६॥

इति कृत्वा मतिं देवा हिमवन्तं नगेश्वरम्।
जग्मुस्तत्र ततो देवीं विष्णुमायां प्रतुष्टुवुः॥७॥

देवा ऊचुः ॥८॥

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम्॥९॥

रौद्रायै नमो नित्यायै गौर्यै धात्र्यै नमो नमः।
ज्योत्स्नायै चेन्दुरूपिण्यै सुखायै सततं नमः॥१०॥

कल्याण्यै प्रणतां वृद्ध्यै सिद्ध्यै कुर्मो नमो नमः।
नैर्ऋत्यै भूभृतां लक्ष्म्यै शर्वाण्यै ते नमो नमः॥११॥
दुर्गायै दुर्गपारायै सारायै सर्वकारिण्यै।

ख्यात्यै तथैव कृष्णायै धूम्रायै सततं नमः॥१२॥

अतिसौम्यातिरौद्रायै नतास्तस्यै नमो नमः।
नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नमः॥१३॥

---

२. हुं इति ख पुस्तके। ३. रां ख पुस्तके, ओं इति पाठान्तरम्।

ॐ ऐं स्त्रीं नमः१४। ॐ ऐं म्लीं नमः१५।
ॐ ऐं प्लूं[४] नमः१६। ॐ ऐं स्हां[५] नमः१७।
ॐ ऐं स्त्रीं नमः१८। ॐ ऐं ग्लूं नमः१९।
ॐ ऐं व्रीं नमः२०। ॐ ऐं सौं[६] नमः२१।
ॐ ऐं लूं[७] नमः२२। ॐ ऐं ल्लूं[८] नमः२३।
ॐ ऐं द्रां नमः२४। ॐ ऐं क्सां नमः२५।
ॐ ऐं क्ष्म्रीं नमः२६। ॐ ऐं ग्लौं नमः२७।
ॐ ऐं स्कूं[९] नमः२८। ॐ ऐं त्रूं नमः२९।
ॐ ऐं स्क्लूं नमः३०। ॐ ऐं क्रौं*[१] नमः३१।
ॐ ऐं छ्रीं*[२] नमः३२। ॐ ऐं म्लूं नमः३३।

ॐ ऐं क्लूं*[३] नमः३४।

या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता।
नमस्तस्यै॥१४॥ नमस्तस्यै॥१५॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥१६॥
या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते।
नमस्तस्यै॥१७॥ नमस्तस्यै॥१८॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥१९॥
या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥२०॥ नमस्तस्यै॥२१॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥२२॥
या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥२३॥ नमस्तस्यै॥२४॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥२५॥
या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥२६॥ नमस्तस्यै॥२७॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥२८॥
या देवी सर्वभूतेषुच्छायारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥२९॥ नमस्तस्यै॥३०॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥३१॥
या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥३२॥ नमस्तस्यै॥३३॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥३४॥

---

४. प्लुं इति ख पुस्तके। ५. स्हौं इति ग पुस्तके। ६. सां इति ख पुस्तके।
७. लं इति ख पुस्तके। ८. ल्लं ख पुस्तके, क्लूं इति पाठान्तरम्। ९. स्कं इति ख–ग पुस्तके। *[१] क्रों इति ग पुस्तके। *[२] द्रीं इति ग पुस्तके। *[३] शां इति ग पुस्तके।

ॐ ऐं शां*[१] नमः३५। ॐ ऐं ल्हीं*[२] नमः३६।
ॐ ऐं स्त्रूं नमः३७। ॐ ऐं ल्लीं नमः३८।
ॐ ऐं लीं नमः३९। ॐ ऐं सं नमः४०।
ॐ ऐं लूं नमः ४१। ॐ ऐं ह्सूं[१०] नमः४२।
ॐ ऐं श्रूं नमः४३। ॐ ऐं जूं नमः४४।
ॐ ऐं ह्स्ल्रीं*[३] नमः४५। ॐ ऐं स्कीं नमः४६।
ॐ ऐं क्लां नमः४७। ॐ ऐं श्रूं नमः४८।
ॐ ऐं हं नमः४९। ॐ ऐं ह्लीं नमः५०।
ॐ ऐं क्स्रूं[११] नमः५१। ॐ ऐं द्रौं नमः५२।
ॐ ऐं क्लूं नमः५३। ॐ ऐं गां नमः५४।
ॐ ऐं सं नमः५५।

या देवी सर्वभूतेषु तृष्णारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै ।।३५।। नमस्तस्यै ।।३६।। नमस्तस्यै नमो नमः।।३७।।
या देवी सर्वभूतेषु क्षान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै ।।३८।। नमस्तस्यै ।।३९।। नमस्तस्यै नमो नमः।।४०।।
या देवी सर्वभूतेषु जातिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै ।।४१।। नमस्तस्यै ।।४२।। नमस्तस्यै नमो नमः।।४३।।
या देवी सर्वभूतेषु लज्जा रूपेण संस्थिता
नमस्तस्यै ।।४४।। नमस्तस्यै ।।४५।। नमस्तस्यै नमो नमः।।४६।।
या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै ।।४७।। नमस्तस्यै ।।४८।। नमस्तस्यै नमो नमः।।४९।।
या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै ।।५०।। नमस्तस्यै ।।५१।। नमस्तस्यै नमो नमः।।५२।।
या देवी सर्वभूतेषु कान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै ।।५३।। नमस्तस्यै ।।५४।। नमस्तस्यै नमो नमः।।५५।।

*[१] ह्लीं इति ग पुस्तके। *[२] लीं इति ग पुस्तके। १०. ह्सं इति ख, ह्यूं इति ग पुस्तके। ११. क्स्रं इति ख पुस्तके, क्त्रूं इति ग पुस्तके। *[३] ह्ल्रीं इति ग पुस्तके।

ॐ ऐं ल्स्रां[१२] नमः५६। ॐ ऐं फ्रीं नमः५७।
ॐ ऐं स्लां नमः५८। ॐ ऐं ल्लूं नमः५९।
ॐ ऐं फ्रें नमः६०। ॐ ऐं ओं[१३] नमः६१।
ॐ ऐं स्म्लीं नमः६२। ॐ ऐं ह्रां नमः६३।
ॐ ऐं ओं[१४] नमः६४। ॐ ऐं ह्लूं नमः६५।
ॐ ऐं हूं*[१] नमः६६। ॐ ऐं नं नमः६७।
ॐ ऐं स्रां नमः६८। ॐ ऐं वं नमः६९।
ॐ ऐं मं नमः७०। ॐ ऐं म्क्लीं नमः७१।
ॐ ऐं शां*[२] नमः७२। ॐ ऐं लं नमः७३।
ॐ ऐं भैं नमः७४। ॐ ऐं ल्लूं नमः७५।
ॐ ऐं हौं नमः७६।

या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै।।५६।। नमस्तस्यै।।५७।। नमस्तस्यै नमो नमः।।५८।।
या देवी सर्वभूतेषु वृत्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै।।५९।। नमस्तस्यै।।६०।। नमस्तस्यै नमो नमः।।६१।।
या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै।।६२।। नमस्तस्यै।।६३।। नमस्तस्यै नमो नमः।।६४।।
या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै।।६५।। नमस्तस्यै।।६६।। नमस्तस्यै नमो नमः।।६७।।
या देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै।।६८।। नमस्तस्यै।।६९।। नमस्तस्यै नमो नमः।।७०।।
या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै।।७१।। नमस्तस्यै।।७२।। नमस्तस्यै नमो नमः।।७३।।
या देवी सर्वभूतेषु भ्रान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै।।७४।। नमस्तस्यै।।७५।। नमस्तस्यै नमो नमः।।७६।।

१२. क्लीं इति पाठान्तरम्। १३. यां इति पाठान्तरम्। १४. ऊं इति ख–ग पुस्तके।
*१ ह्रूं इति ग पुस्तके। *२ श्रां इति ग पुस्तके।

ॐ ऐं ई नमः७७। ॐ ऐं चे[१५] नमः७८।
ॐ ऐं ल्क्रीं*[१] नमः७९। ॐ ऐं ह्ल्रीं*[२] नमः८०।
ॐ ऐं क्ष्म्ल्रीं नमः८१। ॐ ऐं यूं*[३] नमः८२।
ॐ ऐं श्रौं नमः८३। ॐ ऐं ह्रौं नमः८४।
ॐ ऐं भ्रूं नमः८५। ॐ ऐं क्स्त्रीं नमः८६।

इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानां चाखिलेषु या।
भूतेषु सततं तस्यै व्याप्तिदेव्यै नमो नमः।।७७।।
चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद् व्याप्य स्थिता जगत्।
नमस्तस्यै।।७८।। नमस्तस्यै।।७९।। नमस्तस्यै नमो नमः।।८०।।

स्तुता सुरैः पूर्वमभीष्टसंश्रया–
त्तथा सुरेन्द्रेण दिनेषु सेविता।
करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी
शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः।।८१।।
या साम्प्रतं चोद्धतदैत्यतापितै–
रस्माभिरीशा च सुरैर्नमस्यते।
या च स्मृता तत्क्षणमेव हन्ति नः
सर्वापदो भक्तिविनम्रमूर्तिभिः।।८२।।

ऋषिरुवाच ।।८३।।

एवं स्तवादियुक्तानां देवानां तत्र पार्वती।
स्नातुमभ्याययौ तोये जाह्नव्या नृपनन्दन।।८४।।
साब्रवीत्तान् सुरान् सुभ्रूर्भवद्भिः स्तूयतेऽत्र का।
शरीरकोशतश्चास्याः समुद्भूताब्रवीच्छिवा।।८५।।
स्तोत्रं ममैतत् क्रियते शुम्भदैत्यनिराकृतैः।
देवैः समेतैः समरे निशुम्भेन पराजितैः।।८६।।

---

१५. चैं इति पाठान्तरम्। *[१] क्लूीं, क्लीं च इति ग पुस्तके। *[२] ह्लीं इति ग पुस्तके। *[३] पूं इति ग पुस्तके।

ॐ ऐं आं नमः८७। ॐ ऐं क्रूं नमः८८।
ॐ ऐं त्रूं नमः८९। ॐ ऐं डूं[16] नमः९०।
ॐ ऐं जां नमः९१। ॐ ऐं ह्रूं नमः९२।
ॐ ऐं फ्रौं[17] नमः९३। ॐ ऐं क्रौं[18] नमः९४।
ॐ ऐं किं[19] नमः९५। ॐ ऐं ग्लूं[20] नमः९६।

शरीरकोशाद्यत्तस्याः पार्वत्या निःसृताम्बिका।
कौशिकीति समस्तेषु ततो लोकेषु गीयते॥८७॥
तस्यां विनिर्गतायां तु कृष्णाभूत्सापि पार्वती।
कालिकेति समाख्याता हिमाचलकृताश्रया॥८८॥
ततोऽम्बिकां परं रूपं बिभ्राणां सुमनोहरम्।
ददर्श चण्डो मुण्डश्च भृत्यौ शुम्भनिशुम्भयोः॥८९॥
ताभ्यां शुम्भाय चाख्याता अतीव सुमनोहरा।
काप्यास्ते स्त्री महाराज भासयन्ती हिमाचलम्॥९०॥
नैव तादृक् क्वचिद्रूपं दृष्टं केनचिदुत्तमम्।
ज्ञायतां काप्यसौ देवी गृह्यतां चासुरेश्वर॥९१॥
स्त्रीरत्नमतिचार्वङ्गी द्योतयन्ती दिशस्त्विषा।
सा तु तिष्ठति दैत्येन्द्र तां भवान् द्रष्टुमर्हति॥९२॥
यानि रत्नानि मणयो गजाश्वादीनि वै प्रभो।
त्रैलोक्ये तु समस्तानि साम्प्रतं भान्ति ते गृहे॥९३॥
ऐरावतः समानीतो गजरत्नं पुरन्दरात्।
पारिजाततरुश्चायं तथैवोच्चैःश्रवा हयः॥९४॥
विमानं हंससंयुक्तमेतत्तिष्ठति तेऽङ्गणे।
रत्नभूतमिहानीतं यदासीद्वेधसोऽद्भुतम्॥९५॥
निधिरेष महापद्मः समानीतो धनेश्वरात्।
किञ्जल्किनीं ददौ चाब्धिर्मालामम्लानपङ्कजाम्॥९६॥

१६. डुं इति ख, उं इति ग पुस्तके। १७. फ्रां इति पाठान्तरम्। १८. क्रों इति पाठान्तरम्। १९. वीं इति पाठान्तरम्। २०. ग्लों, इति पाठान्तरम्।

ॐ ऐं छ्रक्लीं[२१] नमः९७। ॐ ऐं रं नमः९८।
ॐ ऐं क्सैं नमः९९। ॐ ऐं स्हुं*[१] नमः१००।
ॐ ऐं श्रौं नमः१०१। ॐ ऐं ह्श्रीं*[२] नमः१०२।
ॐ ऐं ओं नमः१०३। ॐ ऐं लूं नमः१०४।
ॐ ऐं ल्हूं*[३] नमः१०५। ॐ ऐं ल्लूं[२२] नमः१०६।

छत्रं ते वारुणं गेहे काञ्चनस्त्रावि तिष्ठति।
तथायं स्यन्दनवरो यः पुराऽऽसीत्प्रजापतेः।।९७।।
मृत्योरुत्क्रान्तिदा नाम शक्तिरीश त्वया हृता।
पाशः सलिलराजस्य भ्रातुस्तव परिग्रहे।।९८।।
निशुम्भस्याब्धिजाताश्च समस्ता रत्नजातयः।
वह्निरपि ददौ तुभ्यमग्निशौचे च वाससी।।९९।।
एवं दैत्येन्द्र रत्नानि समस्तान्याहृतानि ते।
स्त्रीरत्नमेषा कल्याणी त्वया कस्मान्न गृह्यते।।१००।।

ऋषिरुवाच ।।१०१।।

निशम्येति वचः शुम्भः स तदा चण्डमुण्डयोः।
प्रेषयामास सुग्रीवं दूतं देव्या महासुरम्।।१०२।।
इति चेति च वक्तव्या सा गत्वा वचनान्मम।
यथा चाभ्येति सम्प्रीत्या तथा कार्यं त्वया लघु।।१०३।।
स तत्र गत्वा यत्रास्ते शैलोद्देशेऽतिशोभने।
सा देवी तां ततः प्राह श्लक्ष्णं मधुरया गिरा।।१०४।।

दूत उवाच।।१०५।।

देवि दैत्येश्वरः शुम्भस्त्रैलोक्ये परमेश्वरः।
दूतोऽहं प्रेषितस्तेन त्वत्सकाशमिहागतः।।१०६।।

---

२१. क्लीं इति ख, ध्क्लीं इति ग पुस्तके। *१ स्हूं इति ग पुस्तके।
*२ श्श्रीं इति ग पुस्तके। *३ ह्लूं इति ग पुस्तके। २२. ल्लं ख पुस्तके, प्लूं इति पाठान्तरम्।

ॐ ऐं स्क्रीं[२३] नमः१०७। ॐ ऐं स्त्रौं[*१] नमः१०८।
ॐ ऐं स्भ्रूं[*२] नमः१०९। ॐ ऐं क्ष्म्क्लीं[*३] नमः११०।
ॐ ऐं व्रीं नमः१११। ॐ ऐं सीं नमः११२।
ॐ ऐं भ्रूं[२४] नमः११३। ॐ ऐं लां[२५] नमः११४।
ॐ ऐं श्रौं नमः११५। ॐ ऐं स्हैं[२६*] नमः११६।

अव्याहताज्ञः सर्वासु यः सदा देवयोनिषु।
निर्जिताखिलदैत्यारिः स यदाह शृणुष्व तत्॥१०७॥
मम त्रैलोक्यमखिलं मम देवा वशानुगाः।
यज्ञभागानहं सर्वानुपाश्नामि पृथक् पृथक्॥१०८॥
त्रैलोक्ये वररत्नानि मम वश्यान्यशेषतः॥
तथैव गजरत्नं च हत्वा[*४] देवेन्द्रवाहनम्॥१०९॥
क्षीरोदमथनोद्भूतमश्वरत्नं ममामरैः।
उच्चैःश्रवससंज्ञं तत्प्रणिपत्य समर्पितम्॥११०॥
यानि चान्यानि देवेषु गन्धर्वेषूरगेषु च।
रत्नभूतानि भूतानि तानि मय्येव शोभने॥१११॥
स्त्रीरत्नभूतां त्वां देवि लोके मन्यामहे वयम्।
सा त्वमस्मानुपागच्छ यतो रत्नभुजो वयम्॥११२॥
मां वा ममानुजं वापि निशुम्भमुरुविक्रमम्।
भज त्वं चञ्चलापाङ्गि रत्नभूतासि वै यतः॥११३॥
परमैश्वर्यमतुलं प्राप्स्यसे मत्परिग्रहात्।
एतद् बुद्ध्या समालोच्य मत्परिग्रहतां व्रज॥११४॥

ऋषिरुवाच ॥११५॥

इत्युक्ता सा तदा देवी गम्भीरान्तः स्मिता जगौ।
दुर्गा भगवती भद्रा ययेदं धार्यते जगत्॥११६॥

२३. स्लीं इति पाठान्तरम्। *१ स्खौं इति ग पुस्तके। *२ स्भ्रौं इति ग पुस्तके।
*३ क्ष्म्ल्रीं इति ग पुस्तके। २४. भूं इति ख—ग पुस्तके। २५. प्लां इति पाठान्तरम्।
२६. स्हें इति ग पुस्तके, स्हौं इति पाठान्तरम्। *४ 'हृतम्' इति ख पुस्तके।

ॐ ऐं ह्रीं नमः११७। ॐ ऐं श्रीं नमः११८।

ॐ ऐं फ्रें नमः११९। ॐ ऐं रूं[२७] नमः१२०।

ॐ ऐं च्छ्रूं[२८] नमः१२१। ॐ ऐं ल्हूं* नमः१२२।

ॐ ऐं कं नमः१२३। ॐ ऐं द्रें[२९] नमः१२४।

ॐ ऐं श्रीं नमः१२५। ॐ ऐं सां[३०] नमः१२६।

देव्युवाच ॥११७॥

सत्यमुक्तं त्वया नात्र मिथ्या किंचित्त्वयोदितम्।
त्रैलोक्याधिपतिः शुम्भो निशुम्भश्चापि तादृशः॥११८॥
किं त्वत्र यत्प्रतिज्ञातं मिथ्या तत्क्रियते कथम्।
श्रूयतामल्पबुद्धित्वात्प्रतिज्ञा या कृता पुरा॥११९॥
यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्पं व्यपोहति।
यो मे प्रतिबलो लोके स मे भर्ता भविष्यति॥१२०॥
तदागच्छतु शुम्भोऽत्र निशुम्भो वा महासुरः।
मां जित्वा किं चिरेणात्र पाणिं गृह्णातु मे लघु॥१२१॥

दूत उवाच ॥१२२॥

अवलिप्तासि मैवं त्वं देवि ब्रूहि ममाग्रतः।
त्रैलोक्ये कः पुमांस्तिष्ठेदग्रे शुम्भनिशुम्भयोः॥१२३॥
अन्येषामपि दैत्यानां सर्वे देवा न वै युधि।
तिष्ठन्ति सम्मुखे देवि किं पुनः स्त्री त्वमेकिका॥१२४॥
इन्द्राद्याः सकला देवास्तस्थुर्येषां न संयुगे।
शुम्भादीनां कथं तेषां स्त्री प्रयास्यसि सम्मुखम्॥१२५॥
सा त्वं गच्छ मयैवोक्ता पार्श्वे शुम्भनिशुम्भयोः।
केशाकर्षणनिर्धूतगौरवा मा गमिष्यसि॥१२६॥

---

२७. रुं इति ख पुस्तके। २८. च्छ्रूं ख पुस्तके, च्छ्रां इति पाठान्तरम्। * ह्लूं इति ग पुस्तके।
२९. द्रं इति पाठान्तरम्। ३०. कों इति पाठान्तरम्।

ॐ ऐं ह्रीं नमः१२७। ॐ ऐं ऐं नमः१२८।

ॐ ऐं स्क्लीं नमः१२९।

*

इति पंचमोऽध्यायः

देव्युवाच ॥१२७॥

एवमेतद् बली शुम्भो निशुम्भश्चातिवीर्यवान्।
किं करोमि प्रतिज्ञा मे यदनालोचिता पुरा॥१२८॥
स त्वं गच्छ मयोक्तं ते यदेतत्सर्वमादृतः।
तदाचक्ष्वासुरेन्द्राय स च युक्तं करोतु तत्॥ॐ॥१२९॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
देव्या दूतसंवादो नाम पञ्चमोऽध्यायः॥५॥

卐

* बीजमंत्र उपलब्ध नहीं है। अतः इस के स्थान पर नवार्णमंत्र से हवन किया जा सकता है।

अथ षष्ठोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐ नागाधीश्वरविष्टरां फणिफणोत्तंसोरुरत्नावली–
भास्वद्देहलतां दिवाकरनिभां नेत्रत्रयोद्भासिताम्।
मालाकुम्भकपालनीरजकरां चन्द्रार्धचूडां परां
सर्वज्ञेश्वरभैरवाङ्कनिलयां पद्मावतीं चिन्तये।।

ॐ ऐं श्रौं नमः१। ॐ ऐं ओं* नमः२।
ॐ ऐं त्रूं नमः३। ॐ ऐं ह्रौं नमः४।
ॐ ऐं क्रौं नमः५। ॐ ऐं श्रौं नमः६।

ॐ ऋषिरुवाच ।।१।।

इत्याकर्ण्य वचो देव्याः स दूतोऽमर्षपूरितः।
समाचष्ट समागम्य दैत्यराजाय विस्तरात्।।२।।

तस्य दूतस्य तद्वाक्यमाकर्ण्यासुरराट् ततः ।
सक्रोधः प्राह दैत्यानामधिपं धूम्रलोचनम्।।३।।

हे धूम्रलोचनाशु त्वं स्वसैन्यपरिवारितः ।
तामानय बलाद् दुष्टां केशाकर्षणविह्वलाम्।।४।।

तत्परित्राणदः कश्चिद्यदि वोत्तिष्ठतेऽपरः।
स हन्तव्योऽमरो वापि यक्षो गन्धर्व एव वा।।५।।

ऋषिरुवाच ।।६।।

* ब्रों इति ग पुस्तके।

ॐ ऐं त्रीं नमः७। ॐ ऐं क्लीं नमः८।
ॐ ऐं प्रीं नमः९। ॐ ऐं ह्रीं नमः१०।
ॐ ऐं ह्रौं नमः११। ॐ ऐं श्रौं नमः१२।
ॐ ऐं ऐं[1] नमः१३। ॐ ऐं ओं नमः१४।
ॐ ऐं श्रीं नमः१५। ॐ ऐं क्रां[2] नमः१६।

तेनाज्ञप्तस्ततः शीघ्रं स दैत्यो धूम्रलोचनः ।
वृतः षष्ट्या सहस्राणामसुराणां द्रुतं ययौ॥७॥
स दृष्ट्वा तां ततो देवीं तुहिनाचलसंस्थिताम् ।
जगादोच्चैः प्रयाहीति मूलं शुम्भनिशुम्भयोः॥८॥
न चेत्प्रीत्याद्य भवती मद्भर्तारमुपैष्यति ।
ततो बलान्नयाम्येष केशाकर्षणविह्वलाम्॥९॥

देव्युवाच ॥१०॥

दैत्येश्वरेण प्रहितो बलवान् बलसंवृतः।
बलान्नयसि मामेवं ततः किं ते करोम्यहम्॥११॥

ऋषिरुवाच ॥१२॥

इत्युक्तः सोऽभ्यधावत्तामसुरो धूम्रलोचनः ।
हुंकारेणैव तं भस्म सा चकाराम्बिका ततः॥१३॥
अथ क्रुद्धं महासैन्यमसुराणां तथाम्बिका ।
ववर्ष सायकैस्तीक्ष्णैस्तथा शक्तिपरश्वधैः॥१४॥
ततो धुतसटः कोपात्कृत्वा नादं सुभैरवम् ।
पपातासुरसेनायां सिंहो देव्याः स्ववाहनः॥१५॥
कांश्चित् करप्रहारेण दैत्यानास्येन चापरान् ।
आक्रम्य चाधरेणान्यान् स जघान महासुरान्॥१६॥

---

१. एं इति ख पुस्तके, श्रीं इति पाठान्तरम्। २. क्रीं इति पाठान्तरम्।

ॐ ऐं हूं नमः१७। ॐ ऐं छ्रां क्लीं[3] नमः१८।
ॐ ऐं क्ष्म्क्ल्रीं नमः१९। ॐ ऐं ल्लूं[4] नमः२०।
ॐ ऐं सौं* नमः२१। ॐ ऐं ह्लौं[5] नमः२२।
ॐ ऐं क्रूं नमः२३। ॐ ऐं सौं[6] नमः२४।

'ॐ श्रीं यं ह्रीं क्लीं ह्रीं फट् स्वाहा'

इति षष्ठोऽध्यायः

केषांचित्पाटयामास नखैः कोष्ठानि केसरी ।
तथा तलप्रहारेण शिरांसि कृतवान् पृथक्।।१७।।
विच्छिन्नबाहुशिरसः कृतास्तेन तथापरे।
पपौ च रुधिरं कोष्ठादन्येषां धुतकेसरः।।१८।।
क्षणेन तद्बलं सर्वं क्षयं नीतं महात्मना ।
तेन केसरिणा देव्या वाहनेनातिकोपिना।।१९।।
श्रुत्वा तमसुरं देव्या निहतं धूम्रलोचनम् ।
बलं च क्षयितं कृत्स्नं देवीकेसरिणा ततः।।२०।।
चुकोप दैत्याधिपतिः शुम्भः प्रस्फुरिताधरः।
आज्ञापयामास च तौ चण्डमुण्डौ महासुरौ।।२१।।
हे चण्ड हे मुण्ड बलैर्बहुभिः परिवारितौ।
तत्र गच्छत गत्वा च सा समानीयतां लघु।।२२।।
केशेष्वाकृष्य बद्ध्वा वा यदि वः संशयो युधि।
तदाशेषायुधैः सर्वैरसुरैर्विनिहन्यताम्।।२३।।
तस्यां हतायां दुष्टायां सिंहे च विनिपातिते।
शीघ्रमागम्यतां बद्ध्वा गृहीत्वा तामथाम्बिकाम्।।ॐ।।२४।।

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
शुम्भनिशुम्भ—सेनानीधूम्रलोचनवधो नाम षष्ठोऽध्यायः।।६।।

---

३. छ्रां इति ख—ग पुस्तके। ४. लूं इति पाठान्तरम्। * सौः इति ग पुस्तके।
५. ह्लां इति ख पुस्तके, म्हौं इति पाठान्तरम्। ६. सां ख पुस्तके, स्हौं इति पाठान्तरम्।

अथ सप्तमोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐ ध्यायेयं रत्नपीठे शुककलपठितं शृण्वतीं श्यामलाङ्गीं
न्यस्तैकाङ्घ्रिं सरोजे शशिशकलधरां वल्लकीं वादयन्तीम्।
कह्लाराबद्धमालां नियमितविलसच्चोलिकां रक्तवस्त्रां
मातङ्गीं शङ्खपात्रां मधुरमधुमदां चित्रकोद्भासिभालाम्।।

ॐ ऐं श्रौं नमः१। ॐ ऐं क्रूं[1] नमः२।
ॐ ऐं ह्रीं नमः३। ॐ ऐं ह्रं नमः४।
ॐ ऐं मूं नमः५। ॐ ऐं त्रौं नमः६।

ॐ ऋषिरुवाच ।।१।।

आज्ञाप्तास्ते ततो दैत्याश्चण्डमुण्डपुरोगमाः।
चतुरङ्गबलोपेता ययुरभ्युद्यतायुधाः।।२।।
ददृशुस्ते ततो देवीमीषद्धासां व्यवस्थिताम्।
सिंहस्योपरि शैलेन्द्रशृङ्गे महति काञ्चने।।३।।
ते दृष्ट्वा तां समादातुमुद्यमं चक्रुरुद्यताः।
आकृष्टचापासिधरास्तथान्ये तत्समीपगाः।।४।।
ततः कोपं चकारोच्चैरम्बिका तानरीन् प्रति।
कोपेन चास्या वदनं मषीवर्णमभूत्तदा।।५।।
भ्रुकुटीकुटिलात्तस्या ललाटफलकाद्द्रुतम्।
काली करालवदना विनिष्क्रान्तासिपाशिनी।।६।।

---

१. कुं इति ख--ग पुस्तके।

ॐ ऐं ह्रौं* नमः७। ॐ ऐं ओं नमः८।
ॐ ऐं ह्सूं[2] नमः९। ॐ ऐं क्लूं नमः१०।
ॐ ऐं कें[3] नमः११। ॐ ऐं नें[4] नमः१२।
ॐ ऐं लूं नमः१३। ॐ ऐं ह्स्लीं नमः१४।
ॐ ऐं प्लूं नमः१५। ॐ ऐं शां नमः१६।

विचित्रखट्वाङ्गधरा नरमालाविभूषणा।
द्वीपिचर्मपरीधाना शुष्कमांसातिभैरवा।।७।।
अतिविस्तारवदना जिह्वाललनभीषणा।
निमग्नारक्तनयना नादापूरितदिङ्मुखा।।८।।
सा वेगेनाभिपतिता घातयन्ती महासुरान्।
सैन्ये तत्र सुरारीणामभक्षयत् तद्बलम्।।९।।
पार्ष्णिग्राहाङ्कुशग्राहियोधघण्टासमन्वितान्।
समादायैकहस्तेन मुखे चिक्षेप वारणान्।।१०।।
तथैव योधं तुरगै रथं सारथिना सह।
निक्षिप्य वक्त्रे दशनैश्चर्वयन्त्यतिभैरवम्।।११।।
एकं जग्राह केशेषु ग्रीवायामथ चापरम्।
पादेनाक्रम्य चैवान्यमुरसान्यमपोथयत्।।१२।।
तैर्मुक्तानि च शस्त्राणि महास्त्राणि तथासुरैः।
मुखेन जग्राह रुषा दशनैर्मथितान्यपि।।१३।।
बलिनां तद् बलं सर्वमसुराणां दुरात्मनाम्।
ममर्दाभक्षयच्चान्यानन्यांश्चाताडयत्तथा।।१४।।
असिना निहिताः केचित्केचित्खट्वाङ्गताडिताः।
जग्मुर्विनाशमसुरा दन्ताग्राभिहतास्तथा।।१५।।
क्षणेन तद् बलं सर्वमसुराणां निपातितम्।
दृष्ट्वा चण्डोऽभिदुद्राव तां कालीमतिभीषणाम्।।१६।।

---

* ह्रां, ह्रौं च ग पुस्तके। २. ह्सूं इति पाठान्तरम्। ३. क्रें इति ग पुस्तके, क्रैं इति पाठान्तरम्। ४. नूं इति पाठान्तरम्।

ॐ ऐं स्लूं नमः१७। ॐ ऐं प्लीं नमः१८।
ॐ ऐं प्रैं[5] नमः१९। ॐ ऐं अं नमः२०।
ॐ ऐं औं[6] नमः२१। ॐ ऐं म्लूीं[7] नमः२२।
ॐ ऐं श्रां नमः२३। ॐ ऐं सौं नमः२४।

शरवर्षैर्महाभीमैर्भीमाक्षीं तां महासुरः।
छादयामास चक्रैश्च मुण्डः क्षिप्तैः सहस्रशः।।१७।।

तानि चक्राण्यनेकानि विशमानानि तन्मुखम्।
बभुर्यथार्कबिम्बानि सुबहूनि घनोदरम्।।१८।।

ततो जहासातिरुषा भीमं भैरवनादिनी।
काली करालवक्त्रान्तर्दुर्दर्शदशनोज्ज्वला।।१९।।

उत्थाय च महासिं हं देवी चण्डमधावत।
गृहीत्वा चास्य केशेषु शिरस्तेनासिनाच्छिनत्।।२०।।

अथ मुण्डोऽभ्यधावत्तां दृष्ट्वा चण्डं निपातितम्।
तमप्यपातयद्भूमौ सा खड्गाभिहतं रुषा।।२१।।

हतशेषं ततः सैन्यं दृष्ट्वा चण्डं निपातितम्।
मुण्डं च सुमहावीर्यं दिशो भेजे भयातुरम्।।२२।।

शिरश्चण्डस्य काली च गृहीत्वा मुण्डमेव च।
प्राह प्रचण्डाट्टहासमिश्रमभ्येत्य चण्डिकाम्।।२३।।

मया तवात्रोपहृतौ चण्डमुण्डौ महापशू।
युद्धयज्ञे स्वयं शुम्भं निशुम्भं च हनिष्यसि।।२४।।

---

५. प्रें इति ख–ग पुस्तके, व्रें इति पाठान्तरम्। ६. ओं इति पाठान्तरम्।
७. ल्रां इति ख पुस्तके।

ॐ ऐं ह्रौं* नमः७। ॐ ऐं ओं नमः८।
ॐ ऐं ह्सूं[2] नमः९। ॐ ऐं क्लूं नमः१०।
ॐ ऐं कें[3] नमः११। ॐ ऐं नें[4] नमः१२।
ॐ ऐं लूं नमः१३। ॐ ऐं ह्स्लीं नमः१४।
ॐ ऐं प्लूं नमः१५। ॐ ऐं शां नमः१६।

विचित्रखट्वाङ्गधरा नरमालाविभूषणा।
द्वीपिचर्मपरीधाना शुष्कमांसातिभैरवा।।७।।
अतिविस्तारवदना जिह्वाललनभीषणा।
निमग्नारक्तनयना नादापूरितदिङ्मुखा।।८।।
सा वेगेनाभिपतिता घातयन्ती महासुरान्।
सैन्ये तत्र सुरारीणामभक्षयत् तद्बलम्।।९।।
पार्ष्णिग्राहाङ्कुशग्राहियोधघण्टासमन्वितान्।
समादायैकहस्तेन मुखे चिक्षेप वारणान्।।१०।।
तथैव योधं तुरगै रथं सारथिना सह।
निक्षिप्य वक्त्रे दशनैश्चर्वयन्त्यतिभैरवम्।।११।।
एकं जग्राह केशेषु ग्रीवायामथ चापरम्।
पादेनाक्रम्य चैवान्यमुरसान्यमपोथयत्।।१२।।
तैर्मुक्तानि च शस्त्राणि महास्त्राणि तथासुरैः।
मुखेन जग्राह रुषा दशनैर्मथितान्यपि।।१३।।
बलिनां तद् बलं सर्वमसुराणां दुरात्मनाम्।
ममर्दाभक्षयच्चान्यानन्यांश्चाताडयत्तथा।।१४।।
असिना निहिताः केचित्केचित्खट्वाङ्गताडिताः।
जग्मुर्विनाशमसुरा दन्ताग्राभिहतास्तथा।।१५।।
क्षणेन तद् बलं सर्वमसुराणां निपातितम्।
दृष्ट्वा चण्डोऽभिदुद्राव तां कालीमतिभीषणाम्।।१६।।

* ह्रां, ह्रौं च ग पुस्तके। २. ह्सूं इति पाठान्तरम्। ३. क्रें इति ग पुस्तके, क्रैं इति पाठान्तरम्। ४. नूं इति पाठान्तरम्।

ॐ ऐं स्लूं नमः१७। ॐ ऐं प्लीं नमः१८।
ॐ ऐं प्रैं[5] नमः१९। ॐ ऐं अं नमः२०।
ॐ ऐं औं[6] नमः२१। ॐ ऐं म्लूीं[7] नमः२२।
ॐ ऐं श्रां नमः२३। ॐ ऐं सौं नमः२४।

शरवर्षैर्महाभीमैर्भीमाक्षीं तां महासुरः।
छादयामास चक्रैश्च मुण्डः क्षिप्तैः सहस्रशः॥१७॥

तानि चक्राण्यनेकानि विशमानानि तन्मुखम्।
बभुर्यथार्कबिम्बानि सुबहूनि घनोदरम्॥१८॥

ततो जहासातिरुषा भीमं भैरवनादिनी।
काली करालवक्त्रान्तर्दुर्दर्शदशनोज्ज्वला॥१९॥

उत्थाय च महासिं हं देवी चण्डमधावत।
गृहीत्वा चास्य केशेषु शिरस्तेनासिनाच्छिनत्॥२०॥

अथ मुण्डोऽभ्यधावत्तां दृष्ट्वा चण्डं निपातितम्।
तमप्यपातयद्भूमौ सा खड्गाभिहतं रुषा॥२१॥

हतशेषं ततः सैन्यं दृष्ट्वा चण्डं निपातितम्।
मुण्डं च सुमहावीर्यं दिशो भेजे भयातुरम्॥२२॥

शिरश्चण्डस्य काली च गृहीत्वा मुण्डमेव च।
प्राह प्रचण्डाट्टहासमिश्रमभ्येत्य चण्डिकाम्॥२३॥

मया तवात्रोपहृतौ चण्डमुण्डौ महापशू।
युद्धयज्ञे स्वयं शुम्भं निशुम्भं च हनिष्यसि॥२४॥

---

५. प्रें इति ख—ग पुस्तके, व्रें इति पाठान्तरम्। ६. ओं इति पाठान्तरम्।
७. ल्रां इति ख पुस्तके।

ॐ ऐं श्रौं नमः२५। ॐ ऐं प्रीं नमः२६।

ॐ ऐं ह्स्व्रीं नमः२७।

'ॐ रं रं रं कं कं कं जं जं जं चामुण्डायै फट् स्वाहा'

इति सप्तमोऽध्यायः

ऋषिरुवाच ॥२५॥

तावानीतौ ततो दृष्ट्वा चण्डमुण्डौ महासुरौ ।
उवाच कालीं कल्याणी ललितं चण्डिका वचः॥२६॥
यस्माच्चण्डं च मुण्डं च गृहीत्वा त्वमुपागता ।
चामुण्डेति ततो लोके ख्याता देवि भविष्यसि॥ ॐ॥२७॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
चण्डमुण्डवधो नाम सप्तमोऽध्यायः॥७॥

卐

अथ अथाष्टमोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐ अरुणां करुणातरङ्गिताक्षीं धृतपाशाङ्कुशबाणचापहस्ताम्।
अणिमादिभिरावृतां मयूखैरहमित्येव विभावये भवानीम्॥

ॐ ऐं श्रौं नमः१। ॐ ऐं म्ह्ल्रीं नमः२।
ॐ ऐं प्रूं[1] नमः३। ॐ ऐं ऐं[2] नमः४।
ॐ ऐं क्रों[3] नमः५। ॐ ऐं ईं[4] नमः६।

ॐ ऋषिरुवाच ॥१॥

चण्डे च निहते दैत्ये मुण्डे च विनिपातिते।
बहुलेषु च सैन्येषु क्षयितेष्वसुरेश्वरः॥२॥

ततः कोपपराधीनचेताः शुम्भः प्रतापवान्।
उद्योगं सर्वसैन्यानां दैत्यानामादिदेश ह॥३॥

अद्य सर्वबलैर्दैत्याः षडशीतिरुदायुधाः।
कम्बूनां चतुरशीतिर्निर्यान्तु स्वबलैर्वृताः॥४॥

कोटिवीर्याणि पञ्चाशदसुराणां कुलानि वै।
शतं कुलानि धौम्राणां निर्गच्छन्तु ममाज्ञया॥५॥

कालका दौर्हृदा मौर्याः कालकेयास्तथासुराः।
युद्धाय सज्जा निर्यान्तु आज्ञया त्वरिता मम॥६॥

---

१. प्रं इति ख पुस्तके। २. एं ख पुस्तके, यं इति पाठान्तरम्।
३. क्रौं इति पाठान्तरम्। ४. इं इति ख पुस्तके।

ॐ ऐं ऐं[५] नमः७। ॐ ऐं ल्रीं*[१] नमः८।
ॐ ऐं फ्रौं*[२] नमः९। ॐ ऐं म्लूं[६] नमः१०।
ॐ ऐं नों[७] नमः११। ॐ ऐं हूं नमः१२।
ॐ ऐं फ्रीं[८] नमः१३। ॐ ऐं ग्लौं नमः१४।
ॐ ऐं स्मौं नमः१५। ॐ ऐं सौं[९] नमः१६।

इत्याज्ञाप्यासुरपतिः शुम्भो भैरवशासनः।
निर्जगाम महासैन्यसहस्रैर्बहुभिर्वृतः॥७॥
आयान्तं चण्डिका दृष्ट्वा तत्सैन्यमतिभीषणम्।
ज्यास्वनैः पूरयामास धरणीगगनान्तरम्॥८॥
ततः सिंहो महानादमतीव कृतवान् नृप।
घण्टास्वनेन तन्नादमम्बिका चोपबृंहयत्॥९॥
धनुर्ज्यासिंहघण्टानां नादापूरितदिङ्मुखा।
निनादैर्भीषणैः काली जिग्ये विस्तारितानना॥१०॥
तं निनादमुपश्रुत्य दैत्यसैन्यैश्चतुर्दिशम्।
देवी सिंहस्तथा काली सरोषैः परिवारिताः॥११॥
एतस्मिन्नन्तरे भूप विनाशाय सुरद्विषाम्।
भवायामरसिंहानामतिवीर्यबलान्विताः॥१२॥
ब्रह्मेशगुहविष्णूनां तथेन्द्रस्य च शक्तयः।
शरीरेभ्यो विनिष्क्रम्य तद्रूपैश्चण्डिकां ययुः॥१३॥
यस्य देवस्य यद्रूपं यथाभूषणवाहनम्।
तद्वदेव हि तच्छक्तिरसुरान् योद्धुमाययौ॥१४॥
हंसयुक्तविमानाग्रे साक्षसूत्रकमण्डलुः।
आयाता ब्रह्मणः शक्ति र्ब्रह्माणी साभिधीयते॥१५॥
माहेश्वरी वृषारूढा त्रिशूलवरधारिणी।
महाहिवलया प्राप्ता चन्द्ररेखाविभूषणा॥१६॥

५. एं ख पुस्तके, क्रूं इति पाठान्तरम्। *१ लं इति ग पुस्तके। *२ फ्रों इति ग पुस्तके।
६. ब्लूं इति ख पुस्तके। ७. त्रौं इति पाठान्तरम्। ८. फ्रौं इति ख—ग पुस्तके।
९. स्रौं इति पाठान्तरम्।

ॐ ऐं श्रीं[10] नमः१७। ॐ ऐं स्हौं[11] नमः१८।
ॐ ऐं ख्सें[12] नमः१९। ॐ ऐं क्ष्म्लीं नमः२०।
ॐ ऐं ह्रां* नमः२१। ॐ ऐं वीं नमः२२।
ॐ ऐं लूं[13] नमः२३। ॐ ऐं ल्सीं[14] नमः२४।
ॐ ऐं ब्लों[15] नमः२५। ॐ ऐं त्स्रों[16] नमः२६।

कौमारी शक्तिहस्ता च मयूरवरवाहना।
योद्धुमभ्याययौ दैत्यानम्बिका गुहरूपिणी॥१७॥
तथैव वैष्णवी शक्तिर्गरुडोपरि संस्थिता।
शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गखड्गहस्ताभ्युपाययौ॥१८॥
यज्ञवाराहमतुलं रूपं या बिभ्रतो हरेः।
शक्तिः साप्याययौ तत्र वाराहीं बिभ्रती तनुम्॥१९॥
नारसिंही नृसिंहस्य बिभ्रती सदृशं वपुः।
प्राप्ता तत्र सटाक्षेपक्षिप्तनक्षत्रसंहतिः॥२०॥
वज्रहस्ता तथैवैन्द्री गजराजोपरि स्थिता।
प्राप्ता सहस्रनयना यथा शक्रस्तथैव सा॥२१॥
ततः परिवृतस्ताभिरीशानो देवशक्तिभिः।
हन्यन्तामसुराः शीघ्रं मम प्रीत्याऽऽह चण्डिकाम्॥२२॥
ततो देवीशरीरात्तु विनिष्क्रान्तातिभीषणा।
चण्डिकाशक्तिरत्युग्रा शिवाशतनिनादिनी॥२३॥
सा चाह धूम्रजटिलमीशानमपराजिता।
दूतत्वं गच्छ भगवन् पार्श्वं शुम्भनिशुम्भयोः॥२४॥
ब्रूहि शुम्भं निशुम्भं च दानवावतिगर्वितौ।
ये चान्ये दानवास्तत्र युद्धाय समुपस्थिताः॥२५॥
त्रैलोक्यमिन्द्रो लभतां देवाः सन्तु हविर्भुजः।
यूयं प्रयात पातालं यदि जीवितुमिच्छथ॥२६॥

१०. क्रूं इति पाठान्तरम्। ११. क्लीं इति पाठान्तरम्। १२. ख्सं ख पुस्तके, श्रीं इति पाठान्तरम्। * ह्रौं इति ग पुस्तके। १३. लं इति ख पुस्तके। १४. स्लीं इति ग पुस्तके, ल्सां इति पाठान्तरम्। १५. ब्लीं इति ख–ग पुस्तके। १६. स्रां इति पाठान्तरम्।

ॐ ऐं ब्रू[17] नमः२७। ॐ ऐं श्ल्कीं[18] नमः२८।
ॐ ऐं श्रूं नमः२९। ॐ ऐं ह्रीं नमः३०।
ॐ ऐं शीं नमः३१। ॐ ऐं क्लीं नमः३२।
ॐ ऐं क्लौं नमः३३। ॐ ऐं प्रूं* नमः३४।
ॐ ऐं ह्रूं नमः३५। ॐ ऐं क्लूं नमः३६।

बलावलेपादथ चेद्भवन्तो युद्धकाङ्क्षिणः।
तदागच्छत तृप्यन्तु मच्छिवाः पिशितेन वः॥२७॥
यतो नियुक्तो दौत्येन तया देव्या शिवः स्वयम्।
शिवदूतीति लोकेऽस्मिंस्ततः सा ख्यातिमागता॥२८॥
तेऽपि श्रुत्वा वचो देव्याः शर्वाख्यातं महासुराः।
अमर्षापूरिता जग्मुर्यत्र कात्यायनी स्थिता॥२९॥
ततः प्रथममेवाग्रे शरशक्त्यृष्टिवृष्टिभिः।
ववर्षुरुद्धतामर्षास्तां देवीममरारयः॥३०॥
सा च तान् प्रहितान् बाणाञ्छूलशक्तिपरश्वधान्।
चिच्छेद लीलयाऽऽध्मातधनुर्मुक्तैर्महेषुभिः॥३१॥
तस्याग्रतस्तथा काली शूलपातविदारितान्।
खट्वाङ्गपोथितांश्चारीन् कुर्वती व्यचरत्तदा॥३२॥
कमण्डलुजलाक्षेपहतवीर्यान् हतौजसः।
ब्रह्माणी चाकरोच्छत्रून् येन येन स्म धावति॥३३॥
माहेश्वरी त्रिशूलेन तथा चक्रेण वैष्णवी।
दैत्याञ्जघान कौमारी तथा शक्त्यातिकोपना॥३४॥
ऐन्द्रीकुलिशपातेन शतशो दैत्यदानवाः।
पेतुर्विदारिताः पृथ्व्यां रुधिरौघप्रवर्षिणः॥३५॥
तुण्डप्रहारविध्वस्ता दंष्ट्राग्रक्षतवक्षसः।
वाराहमूर्त्या न्यपतंश्चक्रेण च विदारिताः॥३६॥

---

१७. ब्रुं इति ख पुस्तके। १८. श्ल्कां ख पुस्तके, श्क्तीं—श्क्लीं च इति ग पुस्तके, श्लीं इति पाठान्तरम्। * फ्रूं इति ग पुस्तके।

ॐ ऐं तौं[१९] नमः३७। ॐ ऐं म्लूं[२०] नमः३८।
ॐ ऐं हं[२१] नमः३९। ॐ ऐं स्लूं नमः४०।
ॐ ऐं औं[२२] नमः४१। ॐ ऐं ल्हीं[२३]* नमः४२।
ॐ ऐं श्ल्रीं[२४] नमः४३। ॐ ऐं यां[२५] नमः४४।
ॐ ऐं थ्लीं[२६] नमः४५। ॐ ऐं ल्हीं* नमः४६।

नखैर्विदारितांश्चान्यान् भक्षयन्ती महासुरान्।
नारसिंही चचाराजौ नादापूर्णदिगम्बरा।।३७।।
चण्डाट्टहासैरसुराः शिवदूत्यभिदूषिताः।
पेतुः पृथिव्यां पतितांस्तांश्चखादाथ सा तदा।।३८।।
इति मातृगणं क्रुद्धं मर्दयन्तं महासुरान्।
दृष्ट्वाभ्युपायैर्विविधैर्नेशुर्देवारिसैनिकाः।।३९।।
पलायनपरान् दृष्ट्वा दैत्यान् मातृगणार्दितान्।
योद्धुमभ्याययौ क्रुद्धो रक्तबीजो महासुरः।।४०।।
रक्तबिन्दुर्यदा भूमौ पतत्यस्य शरीरतः।
समुत्पतति मेदिन्यां तत्प्रमाणस्तदासुरः।।४१।।
युयुधे स गदापाणिरिन्द्रशक्त्या महासुरः।
ततश्चैन्द्री स्ववज्रेण रक्तबीजमताडयत्।।४२।।
कुलिशेनाहतस्याशु बहु सुस्राव शोणितम्।
समुत्तस्थुस्ततो योधास्तद्रूपास्तत्पराक्रमाः।।४३।।
यावन्तः पतितास्तस्य शरीराद्रक्तबिन्दवः।
तावन्तः पुरुषा जातास्तद्वीर्यबलविक्रमाः।।४४।।
ते चापि युयुधुस्तत्र पुरुषा रक्तसम्भवाः।
समं मातृभिरत्युग्रशस्त्रपातातिभीषणम्।।४५।।
पुनश्च वज्रपातेन क्षतमस्य शिरो यदा।
ववाह रक्तं पुरुषास्ततो जाताः सहस्रशः।।४६।।

१९. तां ख—ग पुस्तके, स्तां इति पाठान्तरम्। २०. म्लं ख पुस्तके, क्लीं इति पाठान्तरम्। २१. क्लीं इति पाठान्तरम्। २२. ओं इति पाठान्तरम्। २३. ल्हैं इति ख, ह्लौं इति ग पुस्तके। २४. स्लरीं ख, श्लीं इति ग पुस्तके। २५. क्लीं इति पाठान्तरम्। २६. क्ष्लीं इति ग पुस्तके, श्लीं इति पाठान्तरम्। * ह्लीं इति ग पुस्तके।

ॐ ऐं ग्लौं[२७] नमः४७। ॐ ऐं ह्रौं नमः४८।
ॐ ऐं प्रां[२८] नमः४९। ॐ ऐं क्रीं[२९] नमः५०।
ॐ ऐं क्लीं नमः५१। ॐ ऐं न्स्लूं* नमः५२।
ॐ ऐं हीं[३०] नमः५३। ॐ ऐं ह्रौं[३१] नमः५४।
ॐ ऐं ह्रैं नमः५५। ॐ ऐं भ्रं[३२] नमः५६।

वैष्णवी समरे चैनं चक्रेणाभिजघान ह।
गदया ताडयामास ऐन्द्री तमसुरेश्वरम्।।४७।।
वैष्णावीचक्रभिन्नस्य रुधिरस्रावसम्भवैः।
सहस्रशो जगद्व्याप्तं तत्प्रमाणैर्महासुरैः।।४८।।
शक्त्या जघान कौमारी वाराही च तथासिना।
माहेश्वरी त्रिशूलेन रक्तबीजं महासुरम्।।४९।।
स चापि गदया दैत्यः सर्वा एवाहनत् पृथक्।
मातृः कोपसमाविष्टो रक्तबीजो महासुरः।।५०।।
तस्याहतस्य बहुधा शक्तिशूलादिभिर्भुवि।
पपात यो वै रक्तौघस्तेनासञ्छतशोऽसुराः।।५१।।
तैश्चासुरासृक्सम्भूतैरसुरैः सकलं जगत्।
व्याप्तमासीत्ततो देवा भयमाजग्मुरुत्तमम्।।५२।।
तान् विषण्णान् सुरान् दृष्ट्वा चण्डिका प्राह सत्वरा।
उवाच कालीं चामुण्डे विस्तीर्णं वदनं कुरु।।५३।।
मच्छस्त्रपातसम्भूतान् रक्तबिन्दून्महासुरान्।
रक्तबिन्दोः प्रतीच्छ त्वं वक्त्रेणानेन वेगिना।।५४।।
भक्षयन्ती चर रणे तदुत्पन्नान्महासुरान्।
एवमेष क्षयं दैत्यः क्षीणरक्तो गमिष्यति।।५५।।
भक्ष्यमाणास्त्वया चोग्रा न चोत्पत्स्यन्ति चापरे।
इत्युक्त्वा तां ततो देवी शूलेनाभिजघान तम्।।५६।।

२७. ग्लैं इति पाठान्तरम्। २८. श्रां इति पाठान्तरम्। २९. त्रीं इति पाठान्तरम्।
* स्लूं इति ग पुस्तके। ३०. ह्रीं इति ग पुस्तके। ३१. ल्हौं ख पुस्तके, स्लूं इति पाठान्तरम्।
३२. भ्रूं इति पाठान्तरम्।

ॐ ऐं सौं नमः५७। ॐ ऐं श्रीं नमः५८।
ॐ ऐं सूं[1*] नमः५९। ॐ ऐं द्रौं नमः६०।
ॐ ऐं स्त्रां[2*] नमः६१। ॐ ऐं ह्स्लीं नमः६२।
ॐ ऐं स्ल्ल्रीं[3*] नमः६३।

'ॐ शां सं श्रीं श्रं अं अः क्लीं ह्रीं फट् स्वाहा'

इत्यष्टमोऽध्यायः

मुखेन काली जगृहे रक्तबीजस्य शोणितम्।
ततोऽसावाजघानाथ गदया तत्र चण्डिकाम्।।५७।।
न चास्या वेदनां चक्रे गदापातोऽल्पिकामपि।
तस्याहतस्य देहात्तु बहु सुस्राव शोणितम्।।५८।।
यतस्ततस्तद्वक्त्रेण चामुण्डा सम्प्रतीच्छति।
मुखे समुद्गता येऽस्या रक्तपातान्महासुराः।।५९।।
तांश्चखादाथ चामुण्डा पपौ तस्य च शोणितम्।
देवी शूलेन वज्रेण बाणैरसिभिर्ऋष्टिभिः।।६०।।
जघान रक्तबीजं तं चामुण्डापीतशोणितम्।
स पपात महीपृष्ठे शस्त्रसङ्घसमाहतः।।६१।।
नीरक्तश्च महीपाल रक्तबीजो महासुरः।
ततस्ते हर्षमतुलमवापुस्त्रिदशा नृप।।६२।।
तेषां मातृगणो जातो ननर्तासृङ्मदोद्धतः।।ॐ।।६३।।

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे
देवीमाहात्म्ये रक्तबीजवधो नामाष्टमोऽध्यायः।।८।।

卐

[1*] प्सूं इति ग पुस्तके। [2*] स्त्नां इति ग पुस्तके। [3*] स्ल्लीं इति ग पुस्तके।

अथ नवमोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐ बन्धूककाञ्चननिभं रुचिराक्षमालां पाशाङ्कुशौ च वरदां निजबाहुदण्डैः।
बिभ्राणमिन्दुशकलाभरणं त्रिनेत्रमर्धाम्बिकेशमनिशं वपुराश्रयामि।।

ॐ ऐं रौं नमः१। ॐ ऐं क्लीं नमः२।
ॐ ऐं म्लौं[1] नमः३। ॐ ऐं श्रौं[2] नमः४।
ॐ ऐं ग्लीं[3] नमः५। ॐ ऐं ह्रौं नमः६।
ॐ ऐं ह्सौं* नमः७। ॐ ऐं ईं नमः८।

ॐ राजोवाच ।।१।।

विचित्रमिदमाख्यातं भगवन् भवता मम।
देव्याश्चरितमाहात्म्यं रक्तबीजवधाश्रितम् ।।२।।
भूयश्चेच्छाम्यहं श्रोतुं रक्तबीजे निपातिते ।
चकार शुम्भो यत्कर्म निशुम्भश्चातिकोपनः ।।३।।

ऋषिरुवाच ।।४।।

चकार कोपमतुलं रक्तबीजे निपातिते ।
शुम्भासुरो निशुम्भश्च हतेष्वन्येषु चाहवे ।।५।।
हन्यमानं महासैन्यं विलोक्यामर्षमुद्वहन् ।
अभ्यधावन्निशुम्भोऽथ मुख्ययासुरसेनया ।।६।।
तस्याग्रतस्तथा पृष्ठे पार्श्वयोश्च महासुराः ।
संदष्टौष्ठपुटाः क्रुद्धा हन्तुं देवीमुपाययुः ।।७।।
आजगाम महावीर्यः शुम्भोऽपि स्वबलैर्वृतः ।
निहन्तुं चण्डिकां कोपात्कृत्वा युद्धं तु मातृभिः ।।८।।

१. ग्लौं इति पाठान्तरम्। २. श्रां इति ख, श्रीं इति ग पुस्तके।
३. ग्लौं इति पाठान्तरम्। * स्हौं इति ग पुस्तके।

ॐ ऐं ब्रूं[4] नमः९। ॐ ऐं श्रां नमः१०।
ॐ ऐं लूं नमः११। ॐ ऐं आं[5] नमः१२।
ॐ ऐं श्रीं नमः१३। ॐ ऐं क्रौं नमः१४।
ॐ ऐं प्रूं नमः१५। ॐ ऐं क्लीं नमः१६।
ॐ ऐं भ्रं[6] नमः१७। ॐ ऐं ह्रौं[7] नमः१८।

ततो युद्धमतीवासीद्देव्या शुम्भनिशुम्भयोः ।
शरवर्षमतीवोग्रं मेघयोरिव वर्षतोः ॥९॥
चिच्छेदास्ताञ्छरांस्ताभ्यां चण्डिका स्वशरोत्करैः ।
ताडयामास चाङ्गेषु शस्त्रौघैरसुरेश्वरौ ॥१०॥
निशुम्भो निशितं खड्गं चर्म चादाय सुप्रभम् ।
अताडयन्मूर्ध्नि सिंहं देव्या वाहनमुत्तमम् ॥११॥
ताडिते वाहने देवी क्षुरप्रेणासिमुत्तमम् ।
निशुम्भस्याशु चिच्छेद चर्म चाप्यष्टचन्द्रकम् ॥१२॥
छिन्ने चर्मणि खड्गे च शक्तिं चिक्षेप सोऽसुरः ।
तामप्यस्य द्विधा चक्रे चक्रेणाभिमुखागताम् ॥१३॥
कोपाध्मातो निशुम्भोऽथ शूलं जग्राह दानवः ।
आयातं मुष्टिपातेन देवी तच्चाप्यचूर्णयत् ॥१४॥
आविध्याथ गदां सोऽपि चिक्षेप चण्डिकां प्रति ।
सापि देव्या त्रिशूलेन भिन्ना भस्मत्वमागता ॥१५॥
ततः परशुहस्तं तमायान्तं दैत्यपुङ्गवम् ।
आहत्य देवी बाणौघैरपातयत भूतले ॥१६॥
तस्मिन्निपतिते भूमौ निशुम्भे भीमविक्रमे ।
भ्रातर्यतीव संक्रुद्धः प्रययौ हन्तुमम्बिकाम् ॥१७॥
स रथस्थस्तथात्युच्चैर्गृहीतपरमायुधैः ।
भुजैरष्टाभिरतुलैर्व्याप्याशेषं बभौ नभः ॥१८॥

४. त्रूं इति पाठान्तरम्। ५. श्रां इति पाठान्तरम्।
६. हं इति ख पुस्तके, भ्रूं इति ग पुस्तके। ७. ह्रीं इति पाठान्तरम्।

ॐ ऐं क्रीं नमः१९। ॐ ऐं म्लीं नमः२०।
ॐ ऐं ग्लौं नमः२१। ॐ ऐं ह्सूं नमः२२।
ॐ ऐं ल्पीं[8] नमः२३। ॐ ऐं ह्रौं नमः२४।
ॐ ऐं ह्स्त्रां[9] नमः२५। ॐ ऐं स्हौं नमः२६।
ॐ ऐं ल्लूं नमः२७। ॐ ऐं क्स्लीं नमः२८।

तमायान्तं समालोक्य देवी शङ्खमवादयत् ।
ज्याशब्दं चापि धनुषश्चकारातीव दुःसहम् ॥१९॥
पूरयामास ककुभो निजघण्टास्वनेन च ।
समस्तदैत्यसैन्यानां तेजोवधविधायिना ॥२०॥
ततः सिंहो महानादैस्त्याजितेभमहामदैः। ।
पूरयामास गगनं गां तथैव दिशो दश ॥२१॥
ततः काली समुत्पत्य गगनं क्ष्मामताडयत् ।
कराभ्यां तन्निनादेन प्राक्स्वनास्ते तिरोहिताः ॥२२॥
अट्टाट्टहासमशिवं शिवदूती चकार ह ।
तैः शब्दैरसुरास्त्रेसुः शुम्भः कोपं परं ययौ ॥२३॥
दुरात्मंस्तिष्ठ तिष्ठेति व्याजहाराम्बिका यदा ।
तदा जयेत्यभिहितं देवैराकाशसंस्थितैः ॥२४॥
शुम्भेनागत्य या शक्तिर्मुक्ता ज्वालातिभीषणा ।
आयान्ती वह्निकूटाभा सा निरस्ता महोल्कया ॥२५॥
सिंहनादेन शुम्भस्य व्याप्तं लोकत्रयान्तरम् ।
निर्घातनिःस्वनो घोरो जितवानवनीपते ॥२६॥
शुम्भमुक्ताञ्छरान्देवी शुम्भस्तत्प्रहिताञ्छरान् ।
चिच्छेद स्वशरैरुग्रैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥२७॥
ततः सा चण्डिका क्रुद्धा शूलेनाभिजघान तम् ।
स तदाभिहतो भूमौ मूर्च्छितो निपपात ह ॥२८॥

८. प्लीं इति ख—ग पुस्तके। ९. ह्रां इति पाठान्तरम्।

ॐ ऐं श्रीं नमः२९। ॐ ऐं स्तूं नमः३०।
ॐ ऐं च्रें नमः३१। ॐ ऐं वीं नमः३२।
ॐ ऐं क्ष्लूं नमः३३। ॐ ऐं श्लूं नमः३४।
ॐ ऐं क्रूं[10] नमः३५। ॐ ऐं क्रां नमः३६।

ततो निशुम्भः सम्प्राप्य चेतनामात्तकार्मुकः ।
आजघान शरैर्देवीं कालीं केसरिणं तथा ॥२९॥

पुनश्च कृत्वा बाहूनामयुतं दनुजेश्वरः ।
चक्रायुधेन दितिजश्छादयामास चण्डिकाम् ॥३०॥

ततो भगवती क्रुद्धा दुर्गा दुर्गार्तिनाशिनी ।
चिच्छेद तानि चक्राणि स्वशरैः सायकांश्च तान् ॥३१॥

ततो निशुम्भो वेगेन गदामादाय चण्डिकाम् ।
अभ्यधावत वै हन्तुं दैत्यसेनासमावृतः ॥३२॥

तस्यापतत एवाशु गदां चिच्छेद चण्डिका ।
खड्गेन शितधारेण स च शूलं समाददे ॥३३॥

शूलहस्तं समायान्तं निशुम्भममरार्दनम् ।
हृदि विव्याध शूलेन वेगाविद्धेन चण्डिका ॥३४॥

भिन्नस्य तस्य शूलेन हृदयान्निःसृतोऽपरः ।
महाबलो महावीर्यस्तिष्ठेति पुरुषो वदन् ॥३५॥

तस्य निष्क्रामतो देवी प्रहस्य स्वनवत्ततः ।
शिरश्चिच्छेद खड्गेन ततोऽसावपतद्भुवि ॥३६॥

---

१०. क्रं इति ख पुस्तके।

ॐ ऐं ह्रौं[11] नमः३७। ॐ ऐं क्रां नमः३८।
ॐ ऐं स्क्ष्लीं[12] नमः३९। ॐ ऐं सूं[13] नमः४०।
ॐ ऐं फ्रूं[14] नमः४१।
'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सौं फट् स्वाहा'
इति नवमोऽध्यायः

ततः सिंहश्चखादोग्रं दंष्ट्राक्षुण्णशिरोधरान् ।
असुरांस्तांस्तथा काली शिवदूती तथापरान् ॥३७॥
कौमारीशक्तिनिर्भिन्नाः केचिन्नेशुर्महासुराः ।
ब्रह्माणीमन्त्रपूतेन तोयेनान्ये निराकृताः ॥३८॥
माहेश्वरीत्रिशूलेन भिन्नाः पेतुस्तथापरे ।
वाराहीतुण्डघातेन केचिच्चूर्णीकृता भुवि ॥३९॥
खण्डं खण्डं च चक्रेण वैष्णव्या दानवाः कृताः ।
वज्रेण चैन्द्रीहस्ताग्रविमुक्तेन तथापरे ॥४०॥
केचिद्विनेशुरसुराः केचिन्नष्टा महाहवात् ।
भक्षिताश्चापरे कालीशिवदूतीमृगाधिपैः ॥ॐ॥४१॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे
देवीमाहात्म्ये निशुम्भवधो नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥

卐

११. ह्रां इति ख पुस्तके। १२. स्लीं इति पाठान्तरम्।
१३. एं ख पुस्तके, मूं ग पुस्तके, क्लीं इति पाठान्तरम्। १४. फ्रं इति ख पुस्तके।

अथ दशमोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐ उत्तप्तहेमरुचिरां रविचन्द्रवह्निनेत्रां
धनुश्शरयुताङ्कुशपाशशूलम्।
रम्यैर्भुजैश्च दधतीं शिवशक्तिरूपां
कामेश्वरीं हृदि भजामि धृतेन्दुलेखाम्॥

ॐ ऐं श्रौं* नमः१। ॐ ऐं ह्रीं[1] नमः२।
ॐ ऐं ब्लूं[2] नमः३। ॐ ऐं ह्रीं नमः४।
ॐ ऐं म्लूं नमः५। ॐ ऐं श्रौं नमः६।

ऋषिरुवाच ॥१॥

निशुम्भं निहतं दृष्ट्वा भ्रातरं प्राणसम्मितम्।
हन्यमानं बलं चैव शुम्भः क्रुद्धोऽब्रवीद्वचः ॥२॥

बलावलेपाद्दुष्टे त्वं मा दुर्गे गर्वमावह।
अन्यासां बलमाश्रित्य युद्ध्यसे यातिमानिनी ॥३॥

देव्युवाच ॥४॥

एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा।
पश्यैता दुष्ट मय्येव विशन्त्यो मद्विभूतयः ॥५॥

ऋषिरुवाच*

ततः समस्तास्ता देव्यो ब्रह्माणीप्रमुखा लयम्।
तस्या देव्यास्तनौ जग्मुरेकैवासीत्तदाम्बिका ॥६॥

---

* श्रीं इति ग पुस्तके। १. ह्रां ख पुस्तके, ह्रौं इति पाठान्तरम्।
२. ब्लूं ख पुस्तके, ब्रूं इति पाठान्तरम्। * ख पुस्तक में संख्या ६ में 'ऋषिरुवाच' अतिरिक्त पाठ है जिसके लिए मूल पुस्तक के संख्या ६ का बीजमंत्र श्रौं उपयुक्त है।

ॐ ऐं ह्रीं[3] नमः७। ॐ ऐं ग्लीं[4] नमः८।
ॐ ऐं श्रौं[5] नमः९। ॐ ऐं ध्रूं[6] नमः१०।
ॐ ऐं हुं* नमः११। ॐ ऐं द्रौं नमः१२।
ॐ ऐं श्रीं[7] नमः१३। ॐ ऐं श्रूं[8] नमः१४।
ॐ ऐं ब्रूं नमः१५। ॐ ऐं फ्रें नमः१६।

देव्युवाच ॥७॥

अहं विभूत्या बहुभिरिह रूपैर्यदास्थिता ।
तत्संहृतं मयैकैव तिष्ठाम्याजौ स्थिरो भव ॥८॥

ऋषिरुवाच ॥९॥

ततः प्रववृते युद्धं देव्याः शुम्भस्य चोभयोः ।
पश्यतां सर्वदेवानामसुराणां च दारुणम् ॥१०॥
शरवर्षैः शितैः शस्त्रैस्तथास्त्रैश्चैव दारुणैः ।
तयोर्युद्धमभूद्भूयः सर्वलोकभयङ्करम् ॥११॥
दिव्यान्यस्त्राणि शतशो मुमुचे यान्यथाम्बिका ।
बभञ्ज तानि दैत्येन्द्रस्तत्प्रतीघातकर्तृभिः ॥१२॥
मुक्तानि तेन चास्त्राणि दिव्यानि परमेश्वरी ।
बभञ्ज लीलयैवोग्रहुङ्कारोच्चारणादिभिः ॥१३॥
ततः शरशतैर्देवीमाच्छादयत सोऽसुरः ।
सापि तत्कुपिता देवी धनुश्चिच्छेद चेषुभिः ॥१४॥
छिन्ने धनुषि दैत्येन्द्रस्तथा शक्तिमथाददे ।
चिच्छेद देवी चक्रेण तामप्यस्य करे स्थिताम् ॥१५॥
ततः खड्गमुपादाय शतचन्द्रं च भानुमत् ।
अभ्यधावत्तदा देवीं दैत्यानामधिपेश्वरः ॥१६॥

---

३. हूं इति पाठान्तरम्। ४. ग्लौं इति पाठान्तरम्। ५. हं इति ख—ग पुस्तके।
६. धं इति ख, ऐं इति ग पुस्तके। * हूं इति ग पुस्तके। ७. प्रीं इति पाठान्तरम्।
८. त्रूं इति ख—ग पुस्तके ।

ॐ ऐं ह्रां नमः१७। ॐ ऐं जुं नमः१८।
ॐ ऐं स्त्रौं[९] नमः१९। ॐ ऐं स्लूं नमः२०।
ॐ ऐं प्रें नमः२१। ॐ ऐं ह्स्वां[१०] नमः२२।
ॐ ऐं प्रीं नमः२३। ॐ ऐं फ्रां[११] नमः२४।
ॐ ऐं क्रीं नमः२५। ॐ ऐं श्रीं नमः२६।

तस्यापतत एवाशु खड्गं चिच्छेद चण्डिका ।
धनुर्मुक्तैः शितैर्बाणैश्चर्म चार्ककरामलम् ॥१७॥
हताश्वः स तदा दैत्यश्छिन्नधन्वा विसारथिः ।
जग्राह मुद्गरं घोरमम्बिकानिधनोद्यतः ॥१८॥
चिच्छेदापततस्तस्य मुद्गरं निशितैः शरैः ।
तथापि सोऽभ्यधवत्तां मुष्टिमुद्यम्य वेगवान् ॥१९॥
स मुष्टिं पातयामास हृदये दैत्यपुङ्गवः ।
देव्यास्तं चापि सा देवी तलेनोरस्यताडयत् ॥२०॥
तलप्रहाराभिहतो निपपात महीतले ।
स दैत्यराजः सहसा पुनरेव तथोत्थितः ॥२१॥
उत्पत्य च प्रगृह्योच्चैर्देवीं गगनमास्थितः ।
तत्रापि सा निराधारा युयुधे तेन चण्डिका ॥२२॥
नियुद्धं खे तदा दैत्यश्चण्डिका च परस्परम्।
चक्रतुः प्रथमं सिद्धमुनिविस्मयकारकम् ॥२३॥
ततो नियुद्धं सुचिरं कृत्वा तेनाम्बिका सह ।
उत्पात्य भ्रामयामास चिक्षेप धरणीतले ॥२४॥
स क्षिप्तो धरणीं प्राप्य मुष्टिमुद्यम्य वेगितः ।
अभ्यधावत दुष्टात्मा चण्डिकानिधनेच्छया ॥२५॥
तमायान्तं ततो देवी सर्वदैत्यजनेश्वरम् ।
जगत्यां पातयामास भित्वा शूलेन वक्षसि ॥२६॥

---

९. सौं इति ख, सौंः इति ग पुस्तके। १०. ह्रां इति पाठान्तरम्।
११. फां इति पाठान्तरम्।

ॐ ऐं क्रां नमः२७। ॐ ऐं सः नमः२८।
ॐ ऐं क्लीं नमः२९। ॐ ऐं व्रें[१२] नमः३०।
ॐ ऐं ईं[१३] नमः३१। ॐ ऐं ज्स्ह्लरां* नमः३२।*क
ॐ ऐं ज्स्ह्रीं नमः*ख
'ॐ ऐं ह्रीं नमः क्लीं ह्रीं फट् स्वाहा'
इति दशमोऽध्यायः

स गतासुः पपातोर्व्यां देवीशूलाग्रविक्षतः ।
चालयन् सकलां पृथ्वीं साब्धिद्वीपां सपर्वताम् ।।२७।।
ततः प्रसन्नमखिलं हते तस्मिन् दुरात्मनि ।
जगत्स्वास्थ्यमतीवाप निर्मलं चाभवन्नभः ।।२८।।
उत्पातमेघाः सोल्का ये प्रागासंस्ते शमं ययुः ।
सरितो मार्गवाहिन्यस्तथासंस्तत्र पातिते ।।२९।।
ततो देवगणाः सर्वे हर्षनिर्भरमानसाः ।
बभूवुर्निहते तस्मिन् गन्धर्वा ललितं जगुः ।।३०।।
अवादयंस्तथैवान्ये ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।
ववुः पुण्यास्तथा वाताः सुप्रभोऽभूद्दिवाकरः ।।३१।।*क
जज्वलुश्चाग्नयःशान्ताः शान्ता दिग्जनितस्वनाः ।।ॐ।। ३२।।*ख

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
निशुम्भवधो नाम दशमोऽध्यायः ।।१०।।

卐

१२. हें इति ख पुस्तके। १२. इं इति ख–ग पुस्तके। *स्ह्लूँ ग पुस्तके।
ख पुस्तक में –*क के लिए तथा *ख के लिए प्रयुक्त हुआ है

अथ एकादशोऽध्यायः

ध्यानम्

बालरविद्युतिमिन्दुकिरीटां, तुङ्गकुचां नयनत्रययुक्ताम्।
स्मेरमुखीं वरदाङ्कुशपाशाभीतिकरां प्रभजे भुवनेशीम्॥

ॐ ऐं श्रौं[1] नमः१। ॐ ऐं क्रूं[2] नमः२।
ॐ ऐं श्रीं नमः३। ॐ ऐं ल्लीं[3] नमः४।

ऋषिरुवाच ॥१॥

देव्या हते तत्र महासुरेन्द्रे
सेन्द्राः सुरा वह्निपुरोगमास्ताम्।
कात्यायनीं तुष्टुवुरिष्टलाभाद्
विकाशिवक्त्राब्जविकाशिताशाः ॥२॥

देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद
प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं
त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य ॥३॥

आधारभूता जगतस्त्वमेका
महीस्वरूपेण यतः स्थितासि।
अपां स्वरूपस्थितया त्वयैत–
दाप्यायते कृत्स्नमलङ्घ्यवीर्ये ॥४॥

---

१. श्रां इति पाठान्तरम्। २. कुं इति पाठान्तरम्। ३. व्लीं इति पाठान्तरम्।

ॐ ऐं प्रें नम:५। ॐ ऐं सौं[४] नम:६।
ॐ ऐं स्हौं नम:७। ॐ ऐं श्रूं नम:८।
ॐ ऐं क्लीं नम:९। ॐ ऐं स्क्लीं नम:१०।
ॐ ऐं प्रीं नम:११। ॐ ऐं ग्लौं नम:१२।

त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या
विश्वस्य बीजं परमासि माया ।
सम्मोहितं देवि समस्तमेतत्
त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्तिहेतु: ॥५॥
विद्या: समस्तास्तव देवि भेदा:
स्त्रिय: समस्ता: सकला जगत्सु ।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्
का ते स्तुति: स्तव्यपरा परोक्ति: ॥६॥
सर्वभूता यदा देवी स्वर्गमुक्तिप्रदायिनी ।
त्वं स्तुता स्तुतये का वा भवन्तु परमोक्तय: ॥७॥
सर्वस्य बुद्धिरूपेण जनस्य हृदि संस्थिते ।
स्वर्गापवर्गदे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥८॥
कलाकाष्ठादिरूपेण परिणामप्रदायिनि ।
विश्वस्योपरतौ शक्ते नारायणि नमोऽस्तु ते ॥९॥
सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये* शिवे सर्वार्थसाधिके ।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१०॥
सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि ।
गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तु ते ॥११॥
शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे ।
सर्वस्यार्त्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१२॥

४. सौः इति ख पुस्तके। * 'मङ्गल्ये' इति क्वचित् पाठ:।

ॐ ऐ ह्ह्रीं[5] नम:१३। ॐ ऐं स्तौं नम:१४।
ॐ ऐं क्लीं[6] नम:१५। ॐ ऐं म्लीं[7] नम:१६।
ॐ ऐं स्तू*[1] नम:१७। ॐ ऐं ज्स्ह्रीं*[2] नम:१८।
ॐ ऐं फ्रू[8] नम:१९। ॐ ऐं क्रूं नम:२०।
ॐ ऐं ह्रीं नम:२१। ॐ ऐं ल्लूं नम:२२।

हंसयुक्तविमानस्थे ब्रह्माणीरूपधारिणि ।
कौशाम्भःक्षरिके देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१३॥
त्रिशूलचन्द्राहिधरे महावृषभवाहिनि ।
माहेश्वरीस्वरूपेण नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१४॥
मयूरकुक्कुटवृते महाशक्तिधरेऽनघे ।
कौमारीरूपसंस्थाने नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१५॥
शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गगृहीतपरमायुधे ।
प्रसीद वैष्णवीरूपे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१६॥
गृहीतोग्रमहाचक्रे दंष्ट्रोद्धृतवसुंधरे ।
वराहरूपिणि शिवे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१७॥
नृसिंहरूपेणोग्रेण हन्तुं दैत्यान् कृतोद्यमे ।
त्रैलोक्यत्राणसहिते नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१८॥
किरीटिनि महावज्रे सहस्रनयनोज्ज्वले ।
वृत्रप्राणहरे चैन्द्रि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१९॥
शिवदूतीस्वरूपेण हतदैत्यमहाबले ।
घोररूपे महारावे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥२०॥
दंष्ट्राकरालवदने शिरोमालाविभूषणे ।
चामुण्डे मुण्डमथने नारायणि नमोऽस्तु ते ॥२१॥
लक्ष्मि लज्जे महाविद्ये श्रद्धे पुष्टिस्वधे ध्रुवे ।
महारात्रि महाऽविद्ये नारायणि नमोऽस्तु ते ॥२२॥

---

५. ख पुस्तके, स्ह्रीं ग पुस्तके। (क पुस्तके बीजमत्रं नास्ति)
६. लीं इति ख, जीं इति ग पुस्तके। ७. ग्लीं इति पाठान्तरम्।
*१ जस्ह्रीं इति ग पुस्तके, *२ स्तूं इति ग पुस्तके। ८. फ्रं ख पुस्तके, प्लूं इति पाठान्तरम्।

ॐ ऐं क्ष्म्रीं नमः२३। ॐ ऐं श्रू[९] नमः२४।
ॐ ऐं इं नमः२५। ॐ ऐं जुं नमः२६।
ॐ ऐं त्रै नमः२७। ॐ ऐं द्रू[१०] नमः२८।
ॐ ऐं ह्रौ नमः२९। ॐ ऐं क्लीं नमः३०।

मेधे सरस्वति वरे भूति बाभ्रवि तामसि ।
नियते त्वं प्रसीदेशे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥२३॥
सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते ।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ॥२४॥
एतत्ते वदनं सौम्यं लोचनत्रयभूषितम् ।
पातु नः सर्वभीतिभ्यः कात्यायनि नमोऽस्तु ते ॥२५॥
ज्वालाकरालमत्युग्रमशेषासुरसूदनम् ।
त्रिशूलं पातु नो भीतेर्भद्रकालि नमोऽस्तु ते ॥२६।
हिनस्ति दैत्यतेजांसि स्वनेनापूर्य या जगत् ।
सा घण्टा पातु नो देवि पापेभ्योऽनः सुतानिव ॥२७॥
असुरासृग्वसापङ्कचर्चितस्ते करोज्ज्वलः ।
शुभाय खड्गो भवतु चण्डिके त्वां नता वयम् ॥२८॥
रोगानशेषानपहंसि तुष्टा
रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान् ।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां
त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति ॥२९॥
एतत्कृतं यत्कदनं त्वयाद्य
धर्मद्विषां देवि महासुराणाम् ।
रूपैरनेकैर्बहुधाऽऽत्ममूर्तिं कृत्वाम्बिके तत्प्रकरोति कान्या ॥३०॥

---

९. श्रं इति ख पुस्तके। १०. दूं ख–ग पुस्तके, द्रुं इति पाठान्तरम्।

ॐ ऐं सूं नमः३१। ॐ ऐं हौं[११] नमः३२।
ॐ ऐं श्व्रं[१२] नमः३३। ॐ ऐं व्रूं* नमः३४।
ॐ ऐं फां[१३] नमः३५। ॐ ऐं ह्रीं नमः३६।
ॐ ऐं लं[१४] नमः३७। ॐ ऐं ह्सां[१५] नमः३८।

विद्यासु शास्त्रेषु विवेकदीपे —
ष्वाद्येषु वाक्येषु च का त्वदन्या ।
ममत्वगर्तेऽतिमहान्धकारे विभ्रामयत्येतदतीव विश्वम् ।।३१।।
रक्षांसि यत्रोग्रविषाश्च नागा
यत्रारयो दस्युबलानि यत्र ।
दावानलो यत्र तथाब्धिमध्ये
तत्र स्थिता त्वं परिपासि विश्वम् ।।३२।।
विश्वेश्वरि त्वं परिपासि विश्वं
विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम् ।
विश्वेशवन्द्या भवती भवन्ति
विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्राः ।।३३।।
देवि प्रसीद परिपालय नोऽरिभीते —
र्नित्यं यथासुरवधादधुनैव सद्यः।
पापानि सर्वजगतां प्रशमं नयाशु
उत्पातपाकजनितांश्च महोपसर्गान् ।।३४।।
प्रणतानां प्रसीद त्वं देवि विश्वार्तिहारिणि ।
त्रैलोक्यवासिनामीड्ये लोकानां वरदा भव ।।३५।।

देव्युवाच ।।३६।।

वरदाहं सुरगणा वरं यन्मनसेच्छथ ।
तं वृणुध्वं प्रयच्छामि जगतामुपकारकम् ।।३७।।

देवा ऊचः ।।३८।।

---

११. ह्रीं इति पाठान्तरम्। १२. श्व्रं इति ख पुस्तके, श्चूं इति पाठान्तरम्।
* ब्रूं इति ग पुस्तके। १३. प्रूं ख पुस्तके, स्क्रूं इति ग पुस्तके, स्ह्लूं इति पाठान्तरम्।
१४. लूं इति पाठान्तरम्। १५. ह्सौं इति ग पुस्तके, स्तौं इति पाठान्तरम्।

ॐ ऐं सें नम:३९। ॐ ऐं ह्रीं नम:४०।
ॐ ऐं ह्रौं[16] नम:४१। ॐ ऐं विं नम:४२।
ॐ ऐं प्लीं नम:४३। ॐ ऐं क्ष्म्क्लीं नम:४४।
ॐ ऐं त्स्रां नम:४५। ॐ ऐं प्रं[17] नम:४६।
ॐ ऐं म्लीं[18] नम:४७। ॐ ऐं स्रूं[19] नम:४८।

सर्वाबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि ।
एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम् ॥३९॥

देव्युवाच ॥४०॥

वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते अष्टाविंशतिमे युगे
शुम्भो निशुम्भश्चैवान्यावुत्पत्स्येते महासुरौ ॥४१॥
नन्दगोपगृहे जाता यशोदागर्भसम्भवा ।
ततस्तौ नाशयिष्यामि विन्ध्याचलनिवासिनी ॥४२॥
पुनरप्यतिरौद्रेण रूपेण पृथिवीतले ।
अवतीर्य हनिष्यामि वैप्रचित्तांस्तु दानवान् ॥४३॥
भक्षयन्त्याश्च तानुग्रान् वैप्रचित्तान्महासुरान् ।
रक्ता दन्ता भविष्यन्ति दाडिमीकुसुमोपमा: ॥४४॥
ततो मां देवता: स्वर्गे मर्त्यलोके च मानवा: ।
स्तुवन्तो व्याहरिष्यन्ति सततं रक्तदन्तिकाम् ॥४५॥
भूयश्च शतवार्षिक्यामनावृष्ट्यामनम्भसि ।
मुनिभि: संस्तुता भूमौ संभविष्याम्ययोनिजा ॥४६॥
तत: शतेन नेत्राणां निरीक्षिष्यामि यन्मुनीन् ।
कीर्तयिष्यन्ति मनुजा: शताक्षीमिति मां तत: ॥४७॥
ततोऽहमखिलं लोकमात्मदेहसमुद्भवै: ।
भरिष्यामि सुरा: शाकैरावृष्टे: प्राणधारकै: ॥४८॥

---

१६. हुं इति ख, हीं इति ग पुस्तके। ।१७. मं इति पाठान्तरम्।
१८. म्लौं इति ग पुस्तके, ग्लीं इति पाठान्तरम्। १९. सूं इति पाठान्तरम्।

ॐ ऐं क्ष्मां नम:४९। ॐ ऐं स्तूं[२०] नम:५०।
ॐ ऐं स्ह्रीं[२१] नम:५१। ॐ ऐं थ्रीं[२२] नम:५२।
ॐ ऐं क्रौं[२३] नम:५३। ॐ ऐं श्रां नम:५४।
ॐ ऐं म्लीं नम:५५।

'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं श्रीं सौं नमः फट् स्वाहा'

इति एकादशोऽध्याय:

शाकम्भरीति विख्यातिं तदा यास्याम्यहं भुवि ।
तत्रैव च वधिष्यामि दुर्गमाख्यं महासुरम् ।।४९।।
दुर्गा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति ।
पुनश्चाहं यदा भीमं रूपं कृत्वा हिमाचले ।।५०।।
रक्षांसि भक्षयिष्यामि मुनीनां त्राणकारणात् ।
तदा मां मुनय: सर्वे स्तोष्यन्त्यानम्रमूर्तय: ।।५१।।
भीमा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति ।
यदारुणाख्यस्त्रैलोक्ये महाबाधां करिष्यति ।।५२।।
तदाहं भ्रामरं रूपं कृत्वाऽसंख्येयषट्पदम् ।
त्रैलोक्यस्य हितार्थाय वधिष्यामि महासुरम् ।।५३।।
भ्रामरीति च मां लोकास्तदा स्तोष्यन्ति सर्वत: ।
इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति ।।५४।।
तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम् ।।ॐ।।५५।।

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे
देवीमाहात्म्ये देव्या: स्तुतिर्नामैकादशोऽध्याय: ।।११।।

卐

२०. प्लूं इति पाठान्तरम्। २१. स्क्रीं इति पाठान्तरम्। २२. श्श्रीं इति पाठान्तरम्।
२३. श्रौं इति ग पुस्तके, त्रौं इति पाठान्तरम्।

अथ द्वादशोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐ विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां
कन्याभिः करवालखेटविलसद्धस्ताभिरासेविताम्
हस्तैश्चक्रगदासिखेटविशिखांश्चापं गुणं तर्जनीं
बिभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे॥

ॐ ऐं ह्रीं नमः१। ॐ ऐं ओं[1] नमः२।
ॐ ऐं श्रीं नमः३। ॐ ऐं ईं[2] नमः४।
ॐ ऐं क्लीं नमः५। ॐ ऐं क्रूं[3] नमः६।

ॐ देव्युवाच ॥१॥

एभिः स्तवैश्च मां नित्यं स्तोष्यते यः समाहितः।
तस्याहं सकलां बाधां नाशयिष्याम्यसंशयम् ॥२॥
मधुकैटभनाशं च महिषासुरघातनम्।
कीर्तयिष्यन्ति ये तद्वद् वधं शुम्भनिशुम्भयोः ॥३॥
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां नवम्यां चैकचेतसः।
श्रोष्यन्ति चैव ये भक्त्या मम माहात्म्यमुत्तमम् ॥४॥
न तेषां दुष्कृतं किञ्चिद् दुष्कृतोत्था न चापदः।
भविष्यति न दारिद्र्यं न चैवेष्टवियोजनम् ॥५॥
शत्रुतो न भयं तस्य दस्युतो वा न राजतः।
न शस्त्रानलतोयौघात्कदाचित्सम्भविष्यति ॥६॥

---

१. औं इति पाठान्तरम्। २. इं इति पाठान्तरम्। ३. क्रं इति ख पुस्तके।

ॐ ऐं श्रूं नमः७। ॐ ऐं प्रां नमः८।
ॐ ऐं क्रूं[४] नमः९। ॐ ऐं दिं[५] नमः१०।
ॐ ऐं फ्रें[६] नमः११। ॐ ऐं हं नमः१२।
ॐ ऐं सः नमः१३। ॐ ऐं चें नमः१४।
ॐ ऐं सूं नमः१५। ॐ ऐं प्रीं नमः१६।

तस्मान्ममैतन्माहात्म्यं पठितव्यं समाहितैः ।
श्रोतव्यं च सदा भक्त्या परं स्वस्त्ययनं हि तत् ॥७॥
उपसर्गानशेषांस्तु महामारीसमद्भवान् ।
तथा त्रिविधमुत्पातं माहात्म्यं शमयेन्मम ॥८॥
यत्रैतत्पठ्यते सम्यङ्नित्यमायतने मम ।
सदा न तद्विमोक्ष्यामि सांनिध्यं तत्र मे स्थितम् ॥९॥
बलिप्रदाने पूजायामग्निकार्ये महोत्सवे ।
सर्वं ममैतच्चरितमुच्चार्यं श्राव्यमेव च ॥१०॥
जानताऽजानता वापि बलिपूजां तथा कृताम् ।
प्रतीच्छिष्याम्यहं प्रीत्या वह्निहोमं तथा कृतम् ॥११॥
शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी ।
तस्यां ममैतन्माहात्म्यं श्रुत्वा भक्तिसमन्वितः ॥१२॥
सर्वाबाधाविनिर्मुक्तो धनधान्यसुतान्वितः ।
मनुष्यो मत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः ॥१३॥
श्रुत्वा ममैतन्माहात्म्यं तथा चोत्पत्तयः शुभाः ।
पराक्रमं च युद्धेषु जायते निर्भयः पुमान् ॥१४॥
रिपवः संक्षयं यान्ति कल्याणं चोपपद्यते ।
नन्दते च कुलं पुंसां माहात्म्यं मम शृण्वताम् ॥१५॥
शान्तिकर्मणि सर्वत्र तथा दुःस्वप्नदर्शने।
ग्रहपीडासु चोग्रासु माहात्म्यं शृणुयान्मम ॥१६॥

---

४. क्रां इति पाठान्तरम्। ५. विं इति पाठान्तरम्। ६. फें इति ग पुस्तके, फ्रैं इति पाठान्तरम्।

ॐ ऐं व्लूं[७] नमः१७। ॐ ऐं आं नमः१८।
ॐ ऐं औं[८] नमः१९। ॐ ऐं ह्रीं* नमः२०।
ॐ ऐं क्रीं[९] नमः२१। ॐ ऐं द्रां[१०] नमः२२।
ॐ ऐं श्रीं नमः२३। ॐ ऐं स्लीं नमः२४।
ॐ ऐं क्लीं नमः२५। ॐ ऐं स्लूं[११] नमः२६।

उपसर्गाः शमं यान्ति ग्रहपीडाश्च दारुणाः ।
दुःस्वप्नं च नृभिर्दृष्टं सुस्वप्नमुपजायते ।।१७।।
बालग्रहाभिभूतानां बालानां शान्तिकारकम् ।
संघातभेदे च नृणां मैत्रीकरणमुत्तमम् ।।१८।।
दुर्वृत्तानामशेषाणां बलहानिकरं परम् ।
रक्षोभूतपिशाचानां पठनादेव नाशनम् ।।१९।।
सर्वं ममैतन्माहात्म्यं मम सन्निधिकारकम् ।।२०।।
पशुपुष्पार्घ्यधूपैश्च गन्धदीपैस्तथोत्तमैः
विप्राणां भोजनैर्होमैः प्रोक्षणीयैरहर्निशम् ।।२१।।
अन्यैश्च विविधैर्भोगैः प्रदानैर्वत्सरेण या।
प्रीतिर्मे क्रियते सास्मिन् सकृत्सुचरिते श्रुते ।।२२।।
श्रुतं हरति पापानि तथाऽऽरोग्यं प्रयच्छति ।
रक्षां करोति भूतेभ्यो जन्मनां कीर्तनं मम ।।२३।।
युद्धेषु चरितं यन्मे दुष्टदैत्यनिबर्हणम् ।
तस्मिञ्छ्रुते वैरिकृतं भयं पुंसां न जायते ।।२४।।
युष्माभिः स्तुतयो याश्च याश्च ब्रह्मर्षिभिः कृताः ।
ब्रह्मणा च कृतास्तास्तु प्रयच्छन्ति शुभां मतिम् २५।।
अरण्ये प्रान्तरे वापि दावाग्निपरिवारितः ।
दस्युभिर्वा वृतः शून्ये गृहीतो वापि शत्रुभिः ।।२६।।

७. लूं इति पाठान्तरम्। ८. ओं इति पाठान्तरम्। * ह्रीं इति ग पुस्तके।
९. क्रां इति ख पुस्तके। १०. हुं इति पाठान्तरम्। ११. स्लुं इति पाठान्तरम्।

ॐ ऐं ह्रीं नमः२७। ॐ ऐं व्लीं* नमः२८।
ॐ ऐं त्रों[१२] नमः२९। ॐ ऐं ओं[१३] नमः३०।
ॐ ऐं श्रौं नमः३१। ॐ ऐं ऐं[१४] नमः३२।
ॐ ऐं प्रें[१५] नमः३३। ॐ ऐं द्रूं[१६] नमः३४।
ॐ ऐं क्लूं[१७] नमः३५। ॐ ऐं औं नमः३६।

सिंहव्याघ्रानुयातो वा वने वा वनहस्तिभिः ।
राज्ञा क्रुद्धेन चाज्ञप्तो वध्यो बन्धगतोऽपि वा ॥२७॥
आघूर्णितो वा वातेन स्थितः पोते महार्णवे ।
पतत्सु चापि शस्त्रेषु संग्रामे भृशदारुणे ॥२८॥
सर्वाबाधासु घोरासु वेदनाभ्यर्दितोऽपि वा ।
स्मरन्ममैतच्चरितं नरो मुच्येत सङ्कटात् ॥२९॥
मम प्रभावात्सिंहाद्या दस्यवो वैरिणस्तथा ।
दूरादेव पलायन्ते स्मरतश्चरितं मम ॥३०॥

ऋषिरुवाच॥३१॥

इत्युक्त्वा सा भगवती चण्डिका चण्डविक्रमा ।
पश्यतामेव देवानां तत्रैवान्तरधीयत ॥३२॥
तेऽपि देवा निरातङ्काः स्वाधिकारान् यथा पुरा ।
यज्ञभागभुजः सर्वे चक्रुर्विनिहतारयः ॥३३॥
दैत्याश्च देव्या निहते शुम्भे देवरिपौ युधि ।
जगद्विध्वंसिनि तस्मिन् महोग्रेऽतुलविक्रमे ॥३४॥
निशुम्भे च महावीर्ये शेषाः पातालमाययुः ॥३५॥
एवं भगवती देवी सा नित्यापि पुनः पुनः ।
सम्भूय कुरुते भूप जगतः परिपालनम् ॥३६॥

---

* ब्लीं इति ग पुस्तके। १२. त्रौं इति पाठान्तरम्। १३. श्रं इति पाठान्तरम्। १४. एं इति पाठान्तरम्। १५. प्रैं इति पाठान्तरम्। १६. हुं इति पाठान्तरम्। १७. ब्लूं इति ग पुस्तके, लूं इति पाठान्तरम्।

ॐ ऐं सूं* नमः३७। ॐ ऐं चे[१८] नमः३८।
ॐ ऐं है[१९] नमः३९। ॐ ऐं प्लीं नमः४०।
ॐ ऐं क्षा[२०] नमः४१।

'ॐ यं यं यं रं रं रं ठं ठं ठं फट् स्वाहा'

इति द्वादशोऽध्यायः

तयैतन्मोह्यते विश्वं सैव विश्वं प्रसूयते ।
सा याचिता च विज्ञानं तुष्टा ऋद्धिं प्रयच्छति ॥३७॥
व्याप्तं तयैतत्सकलं ब्रह्माण्डं मनुजेश्वर ।
महाकाल्या महाकाले महामारीस्वरूपया ॥३८॥
सैव काले महामारी सैव सृष्टिर्भवत्यजा ।
स्थितिं करोति भूतानां सैव काले सनातनी ॥३९॥
भवकाले नृणां सैव लक्ष्मीर्वृद्धिप्रदा गृहे ।
सैवाभावे तथाऽलक्ष्मीर्विनाशायोपजायते ॥४०॥
स्तुता सम्पूजिता पुष्पैर्धूपगन्धादिभिस्तथा ।
ददाति वित्तं पुत्रांश्च मतिं धर्मे गतिं शुभाम् ॥ॐ॥४१॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे
देवीमाहात्म्ये फलस्तुतिर्नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

---

* ख पुस्तक में बीजमंत्र फट गया है। १८. चें ह्रूं इति ख पुस्तके।
१९. ह्रूं इति ख–ग पुस्तके। २०. क्षां इति पाठान्तरम्।

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐ बालार्कमण्डलाभासां चतुर्बाहुं त्रिलोचनाम्।
पाशाङ्कुशवराभीतीर्धारयन्तीं शिवां भजे॥

ॐ ऐं श्रौं नमः१। ॐ ऐं व्रीं*[१] नमः२।
ॐ ऐं ओं नमः३। ॐ ऐं औं नमः४।
ॐ ऐं ह्रां*[२] नमः५। ॐ ऐं श्रीं नमः६।
ॐ ऐं श्रां नमः७। ॐ ऐं ओं*[३] नमः८।

ॐ ऋषिरुवाच ॥१॥

एतत्ते कथितं भूप देवीमाहात्म्यमुत्तमम् ।
एवं प्रभावा सा देवी ययेदं धार्यते जगत् ॥२॥
विद्या तथैव क्रियते भगवद्विष्णुमायया ।
तया त्वमेष वैश्यश्च तथैवान्ये विवेकिनः ॥३॥
मोह्यन्ते मोहिताश्चैव मोहमेष्यन्ति चापरे ।
तामुपैहि महाराज शरणं परमेश्वरीम् ॥४॥
आराधिता सैव नृणां भोगस्वर्गापवर्गदा ॥५॥

मार्कण्डेय उवाच ॥६॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा सुरथः स नराधिपः ॥७॥
प्रणिपत्य महाभागं तमृषिं शंसितव्रतम् ।
निर्विण्णोऽतिममत्वेन राज्यापहरणेन च ॥८॥

---

*[१] ब्रीं इति ग पुस्तके। *[२] ह्रीं इति ग पुस्तके। *[३] प्लीं इति ग पुस्तके।
१. औं इति पाठान्तरम्।

ॐ ऐं प्लीं* नमः९। ॐ ऐं सौं नमः१०।
ॐ ऐं ह्रीं नमः११। ॐ ऐं क्रीं नमः१२।
ॐ ऐं ल्लूं नमः१३। ॐ ऐं क्लीं नमः१४।
ॐ ऐं ह्रीं नमः१५। ॐ ऐं प्लीं नमः१६।
ॐ ऐं श्रीं नमः१७। ॐ ऐं ल्लीं नमः१८।

जगाम सद्यस्तपसे स च वैश्यो महामुने ।
संदर्शनार्थमम्बाया नदीपुलिनसंस्थितः ॥९॥

स च वैश्यस्तपस्तेपे देवीसूक्तं परं जपन् ।
तौ तस्मिन् पुलिने देव्याः कृत्वा मूर्तिं महीमयीम् ॥१०॥

अर्हणां चक्रतुस्तस्याः पुष्पधूपाग्नितर्पणैः ।
निराहारौ यताहारौ तन्मनस्कौ समाहितौ ॥११॥

ददतुस्तौ बलिं चैव निजगात्रासृगुक्षितम् ॥१२॥

एवं समाराधयतो स्त्रिभिर्वर्षैर्यतात्मनोः ॥१३॥

परितुष्टा जगद्धात्री प्रत्यक्षं प्राह चण्डिका ॥१४॥

देव्युवाच ॥१५॥

यत्प्रार्थ्यते त्वया भूप त्वया च कुलनन्दन ।
मत्तस्तत्प्राप्यतां सर्वं परितुष्टा ददामि तत् ॥१६॥

मार्कण्डेय उवाच ॥१७॥

ततो वव्रे नृपो राज्यमविभ्रंश्यन्यजन्मनि ।
अत्रैव च निजं राज्यं हतशत्रुबलं बलात् ॥१८॥

* आं इति ग पुस्तके।

ॐ ऐं श्रूं नमः१९। ॐ ऐं ह्रीं नमः२०।
ॐ ऐं त्रूं[२] नमः२१। ॐ ऐं हूं[३] नमः२२।
ॐ ऐं प्रीं*[१] नमः२३। ॐ ऐं ओं[४] नमः२४।
ॐ ऐं सूं*[२] नमः२५। ॐ ऐं श्रीं[५] नमः२६।
ॐ ऐं ह्लौं[६] नमः२७। ॐ ऐं यौं[७] नमः२८।

सोऽपि वैश्यस्ततो ज्ञानं वव्रे निर्विण्णमानसः ।
ममेत्यहमिति प्राज्ञः सङ्गविच्युतिकारकम् ॥१९॥

देव्युवाच ॥२०॥

स्वल्पैरहोभिर्नृपते स्वं राज्यं प्राप्स्यते भवान्।
हत्वा रिपूनस्खलितं तव तत्र भविष्यति ॥२१॥

मृतश्च भूयः सम्प्राप्य जन्म देवाद्विवस्वतः ॥२२॥

सावर्णिको नाम मनुर्भवान् भुवि भविष्यति ॥२३॥

वैश्यवर्य त्वया यश्च वरोऽस्मत्तोऽभिवाञ्छितः ॥२४॥

तं प्रयच्छामि संसिद्ध्यै तव ज्ञानं भविष्यति ॥२५॥

मार्कण्डेय उवाच ॥२६॥

इति दत्त्वा तयोर्देवी यथाभिलषितं वरम् ॥२७॥
बभूवान्तर्हिता सद्यो भक्त्या ताभ्यामभिष्टुता ।

एवं देव्या वरं लब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षभः ॥२८॥

२. ह्सं इति ख पुस्तके । ३. हौं इति ख, हूं इति ग पुस्तके। *१ ह्रां इति ग पुस्तके।
४. ऊं इति ख, प्रीं इति ग पुस्तके। *२ ऊं इति ग पुस्तके। ५. श्रां इति ख, सूं इति ग पुस्तके।
६. सौं इति ख पुस्तके । ७. आं इति ख, षों इति ग पुस्तके।

ॐ ऐं ओं[८] नमः२९।

'ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे'

*

इति त्रयोदशोऽध्यायः

सूर्याज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः ।।२९।।
एवं देव्या वरं लब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षभः।
सूर्याज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः ।।क्लीं ॐ।।

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
सुरथवैश्ययो र्वरप्रदानं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ।।१३।।

आवश्यक—तंत्रदुर्गासप्तशती (या दुर्गासप्तशती) का पाठ पूर्ण कर लेने के बाद पूर्ववत् विनियोग, न्यास तथा ध्यान करके नवार्ण मंत्र का कम से कम १०८ बार जप करना चाहिए। जप के पश्चात् देवीसूक्त (अध्याय ५, मंत्र संख्या ९–८२ पर्यन्त) का पाठ करना चाहिए। दुर्गासप्तशती के पाठ के पश्चात् विनियोग आदि के बाद ९–८२ संख्या तक के श्लोकों का पाठ करना चाहिए।

---

८. आं ल्हीं इति क पुस्तके।
* हवन का बीजमंत्र उपलब्ध नही है। अतः यहाँ नवार्णमंत्र से हवन किया जा सकता है।

दुर्गासप्तशती के सिद्ध बीजमंत्र

तंत्र दुर्गासप्तशती के प्रत्येक बीजमंत्र और इसी प्रकार दुर्गासप्तशती के प्रत्येक श्लोकमंत्र में भगवती दुर्गा की विशिष्ट शक्तियां समाहित हैं। विधिपूर्वक साधना करने पर इन बीज वर्णों में निहित शक्तियां जाग्रत होकर साधक की कामना पूर्ण करती हैं। कौन से बीजमंत्र या श्लोक–मंत्र में कौन–कौन सी शक्ति निहित है, इस रहस्य का अन्वेषण साधक सदियों से करते रहे हैं और प्राप्त परिणामों की जानकारी संसार के कल्याण के लिये सिद्ध–साधक परम्परा से देते रहे हैं। ऐसे ही निश्चित फल देने वाले मंत्रों को 'सिद्ध–मंत्र' के नाम से जाना जाता है।

यह ज्ञातव्य है कि तंत्रदुर्गासप्तशती के बीजमंत्र अपने आप में अद्भुत शक्तियों के भंडार हैं। इन बीजमंत्रों में से कामना के अनुसार साधक कोई भी बीजमंत्र साधना के लिये चुन कर जप आदि कर सकते हैं। इसके अलावा यदि 'दुर्गासप्तशती' के श्लोक मंत्रों की साधना करनी है, तो जिस श्लोक मंत्र की साधना करनी है, उसके बीजमंत्र का सम्पुट देकर भी जप करने की परम्परा है। स्पष्टतः केवल बीजमंत्र, केवल श्लोकमंत्र तथा बीजमंत्र सम्पुटित श्लोकमंत्र के रूप में तीन प्रकार से जप और उनसे विधि के अनुसार हवन आदि करके साधना की जाती है।

साधना के समय दीपक की ज्योति को भगवती का प्रतीक मानकर प्रत्येक श्लोकमंत्र या बीजमंत्र के जप के पश्चात् ज्योति को प्रणाम

करते हुए निश्चित संख्या तक जप करना चाहिये।

यहां तंत्रदुर्गासप्तशती के कुछ सिद्ध बीजमंत्रों और उनके श्लोकमंत्रों का सामान्य विधि के साथ सदियों से प्रचलित साधना का उल्लेख करना उपयोगी रहेगा–

दुर्गासप्तशती के प्रत्येक श्लोकमंत्र से पूर्व कामबीज क्लीं का संपुट देकर ४१ दिन तक प्रतिदिन तीन बार सम्पूर्ण सप्तशती का पाठ करने से सभी कामनाओं की पूर्ति होती है। इसी कामबीज का सम्पुट देकर २१ दिन तक प्रतिदिन १२ बार पाठ करने से वशीकरण की सिद्धि होती है।

सप्तशती के प्रत्येक श्लोक मंत्र के साथ श्रीं बीज का सम्पुट देकर ४९ दिन तक प्रतिदिन १२ बार पाठ करने से अनन्त लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। वाग्बीज ऐं का सम्पुट देकर सप्तशती का 100 बार पाठ करने से विद्या की प्राप्ति होती है।

श्रीसूक्त के मंत्र –

कां सोस्मितां हिरण्यप्राकारमार्द्रां ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम्।
पद्मे स्थितां पद्मवर्णां तामिहोपह्वये श्रियम्॥

का संपुट देकर सप्तशती का पाठ करने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। दुर्गासप्तशती के प्रत्येक श्लोक के पूर्व –

एवमुक्त्वा समुत्पत्य साऽऽरूढा तं महासुरम्।
पादेनाक्रम्य कण्ठे च शूलेनैनमताडयत्॥

का संपुट देकर पाठ करने से मारण की सिद्धि (शत्रुविनाश) होती है।

सप्तशती के श्लोकमंत्र –

ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति॥

का प्रत्येक श्लोकमंत्र के साथ सम्पुट देकर पाठ करने से तुरन्त संमोहन होता है। इसी प्रकार –

रोगानशेषानपहंसि तुष्टा रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान् ।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणांत्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति ।।

का सम्पुट देकर सप्तशती का पाठ करने से समस्त रोगों का विनाश होता है।

इत्युक्ता सा तदा देवी गम्भीरान्तः स्मिता जगौ।
दुर्गा भगवती भद्रा ययेदं धार्यते जगत्।।

श्लोकमंत्र का सम्पुट देकर सप्तशती का पाठ करने से वाणी की विकृति (तुतलाना, हकलाना आदि) का नाश होता है तथा विद्या की प्राप्ति होती है।

भगवत्या कृतं सर्वं न किंचिदवशिष्यते।
यदयं निहतः शत्रुरस्माकं महिषासुरः।।
यदि चापि वरो देयस्त्वयास्माकं महेश्वरि।
संस्मृता त्वं नो हिंसेथाः परमापदः।।
यश्च मर्त्यः स्तवैरेभिस्त्वां स्तोष्यत्यमलानने।
तस्य वित्तर्द्धिविभवैर्धनदारादिसम्पदाम्।।
वृद्धयेऽस्मत्प्रसन्ना त्वं भवेथाः सर्वदाम्बिके।।

इस ११२ अक्षर वाले महामंत्र का जप करने से सभी कामनाओं की पूर्ति होती है। इसी प्रकार –

देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य ।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य ।।

का कामना की गुरुता के अनुसार लक्ष, दशसहस्र या एक सहस्र पाठ करने से कामनाओं की पूर्ति होती है। इनके अलावा सप्तशती के कुछ अन्य प्रचलित सिद्ध बीजमंत्र और श्लोकमंत्र निम्नानुसार हैं–

(१) सामूहिक कल्याण के लिये — **ॐ ऐं दों नम:**

(२) भय विनाश के लिये — **ॐ ऐं प्रें नम:**

(३) विश्व रक्षा के लिये — **ॐ ऐं यां नम:**

(४) विश्व के अभ्युदय के लिये — **ॐ ऐं म्व्रं नम:**

---

१. देव्या यया ततमिदं जगदात्मशक्त्या
निश्शेषदेवगणशक्तिसमूहमूर्त्या।
तामम्बिकामखिलदेवमहर्षिपूज्यां,
भक्त्या नता: स्म विदधातु शुभानि सा न:।।४।३।

२. यस्या: प्रभावमतुलं भगवाननन्तो
ब्रह्मा हरश्च न हि वक्तुमलं बलं च।
सा चण्डिकाखिलजगत्परिपालनाय
नाशाय चाशुभभयस्य मतिं करोतु।।४।४।

३. या श्री: स्वयं सुकृतिना भवनेष्वलक्ष्मी:
पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धि:।
श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा
तां त्वां नता: स्म परिपालय देवि विश्वम्।।४।५।

४. विश्वेश्वरि त्वं परिपासि विश्वं
विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम्।
विश्वेशवन्द्या भवती भवन्ति
विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्रा:।११।३३।

(५) विपत्तियों के नाश के लिये — ॐ ऐं श्रों नमः

(६) विश्वके पाप—ताप विनाश हेतु — ॐ ऐं व्रूं नमः

(७) विपत्ति—नाशके लिये — ॐ ऐं ग्लौं नमः

(८) विपत्तिनाश एवं शुभ के लिये — ॐ ऐं क्ष्म्ल्रीं नमः

(९) भयविनाश के लिये

(क) — ॐ ऐं श्रूं नमः

(ख) — ॐ ऐं इं नमः

(ग) — ॐ ऐं जुं नमः

५. देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद
प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं।
त्वमीश्चरि देवि चराचरस्य।।११।३।

६. देवि प्रसीद परिपालय नोऽरिभीते —
र्नित्यं यथासुरवधादधुनैव सद्यः।
पापानि सर्वजगतां प्रशमं नयाशु
उत्पातपाकजनितांश्च महोपसर्गान्।।११।३४।

७. शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते।।११।१२।

८. करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी
शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः।।५।८१।

९.(क) सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते।।११।२४।

(ख) एतत्ते वदनं सौम्यं लोचनत्रयभूषितम्।
पातु नः सर्वभीतिभ्यः कात्यायनि नमोऽस्तु ते।।११।२५।

(ग) ज्वालाकरालमत्युग्रमशेषासुरसूदनम्
त्रिशूलं पातु नो भीतेर्भद्रकालि नमोऽस्तु ते।।११।२६।

(१०) रोग—नाश हेतु — ॐ ऐं ह्रौं नमः

(११) बाधा—शान्ति हेतु — ॐ ऐं सें नमः

(१२) दारिद्र्यदु:खादिनाश हेतु — ॐ ऐं श्रीं नमः

(१३) रक्षा के लिये — ॐ ऐं फ्रें नमः

(१४) कल्याण हेतु — ॐ ऐं स्क्लीं नमः

(१५) प्रसन्नता के लिये — ॐ ऐं फां नमः

१०. रोगानशेषानपहंसि तुष्टा
रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान्।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां
त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति।।११।२९।

११. सर्वाबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि।
एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम्।।११।३९।

१२. दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तो:
स्वस्थै: स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि।
दारिद्र्यदु:खभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदार्द्रचित्ता।।४।१७।

१३. शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके।
घण्टास्वनेन न: पाहि चापज्यानि:स्वनेन च ।।४।२४।

१४. सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते।।११।१०।

१५. प्रणतानां प्रसीद त्वं देवि विश्वार्तिहारिणि।
त्रैलोक्यवासिनामीड्ये लोकानां वरदा भव।।११।३५।

(१६) उपद्रवों से बचने हेतु — ३ॐ ऐं ह्रौं नमः

(१७) स्वर्ग और मुक्तिके लिये — ३ॐ ऐं श्रूं नमः

(१८) मोक्षकी प्राप्ति हेतु — ३ॐ ऐं प्रें नमः

१६. रक्षांसि यत्रोग्रविषाश्च नागा
यत्रारयो दस्युबलानि यत्र।
दावानलो यत्र तथाब्धिमध्ये
तत्र स्थिता त्वं परिपासि विश्वम्।।११।३२।

१७. सर्वस्य बुद्धिरूपेण जनस्य हृदि संस्थिते।
स्वर्गापवर्गदे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते।।११।८।

१८. त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या
विश्वस्य बीजं परमासि माया।
सम्मोहितं देवि समस्तमेतत्
त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्तिहेतुः।।११।५।